


वर्ष ४५ ] * * * * [ अङ्क १

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

संस्करण १,७५,०००

# विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९६, मार्च १९७१



## चित्र-सूची

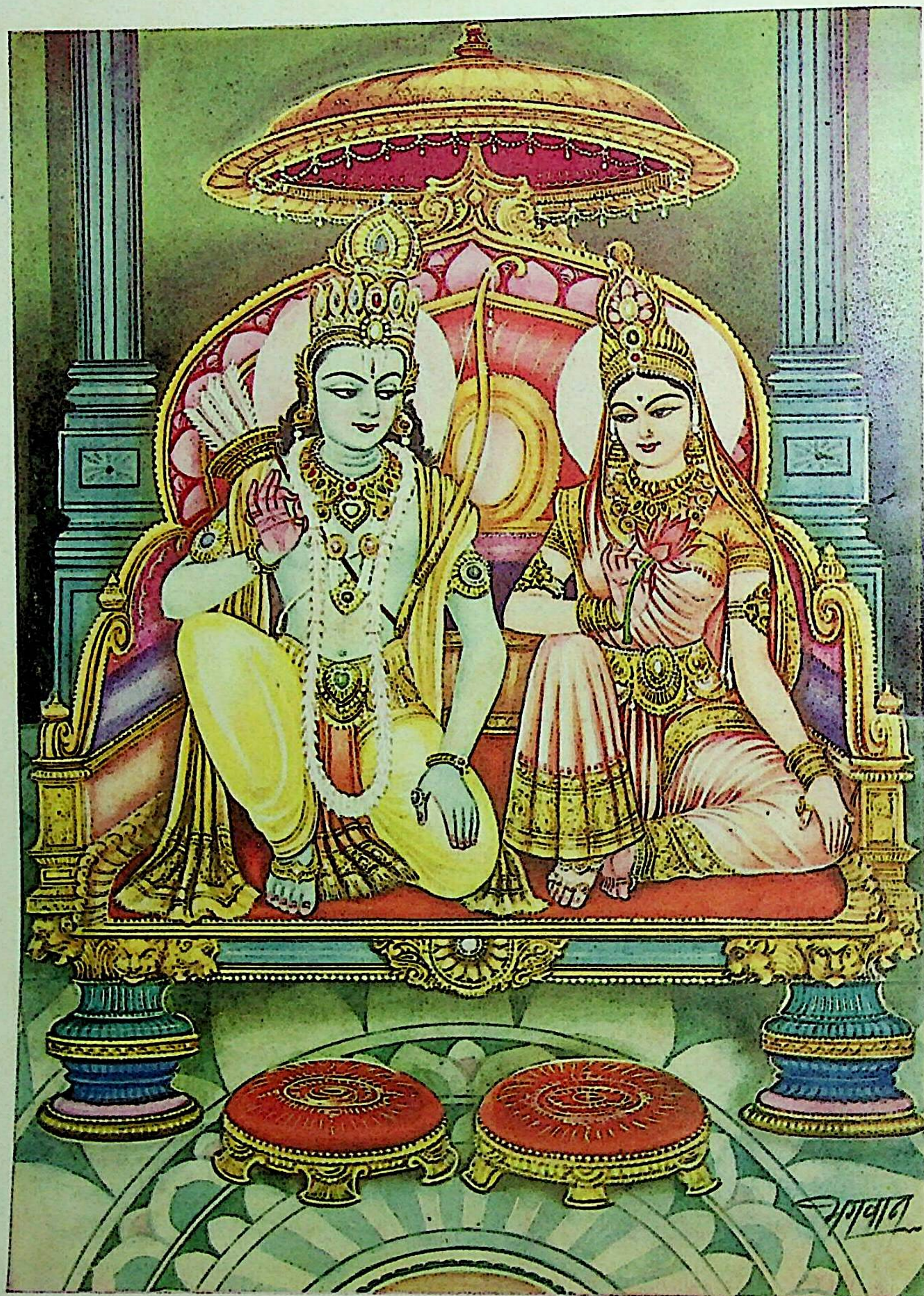



वार्षिक मूल्य भारतमें १०.०० विदेशमें १६.०० ( १८ शिलिंग ) } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ।। { साधारण प्रति भारतमें ६० पैसे विदेशमें रु० १.०० ( १५पेंस )

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार । सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

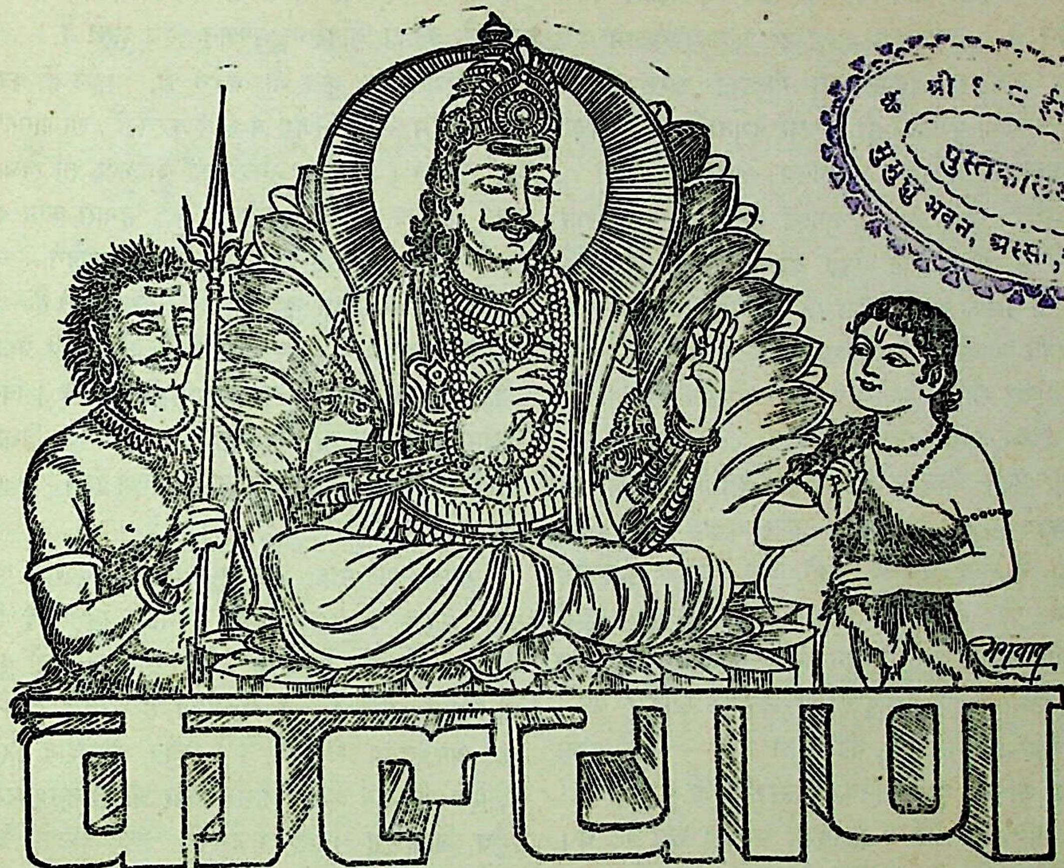
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर


श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी.




अवधके राजा-रानी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥




अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे । इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ॥

( अग्निपुराण )


वर्ष ४५ } गोरखपुर, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९६, मार्च १९७१ { संख्या ३ पूर्ण संख्या ५३२


## मधुर राजवेषमें श्रीसीताराम

लखे हम बहुत दिनन पर आज ॥

राजमाधुरी बेष, सिया जुत, राजन के महाराज ।

कनक-सिंघासन आसन सोभित अंग-अंग छबि छाज ॥

नख-सिख रूप अनूप जुगल जग रति-मनोज सिरताज ।

'दास बना' भ्रम भयौ साँचु किधौं पल बिछोह कस काज ॥

( संत बनादासजी )

भगवान्‌को प्राप्त करनेके साधनोंमें सबसे सरल साधन है—भगवान्‌के शरण हो जाना। गीतामें यदि देखा जाय तो शरणागतिसे गीताका आरम्भ है और शरणागतिकी पूर्णतामें ही गीताकी पूर्णता है। भगवान्‌की शरणागतिका अर्थ है—भगवान्‌का अपना बन जाना।

छोटा बच्चा अपने आपको सर्वथा मातापर निर्भर रखता है, यद्यपि वह ऐसा करता है अज्ञानपूर्वक ही; फिर भी उसकी सारी सँभाल माँ करती है। इसी प्रकार जो वास्तवमें भगवान्‌के शरणागत हैं, उनकी रक्षाका, उनके योगक्षेमका सारा भार स्वयं भगवान् वहन करते हैं—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्।'**

भगवान् जिसका जिम्मा ले लेते हैं, उसका कोई भी कार्य—चाहे वह छोटे-से-छोटा या बड़े-से-बड़ा क्यों न हो—वे स्वयं करते हैं, उनके लिये कार्यके छोटे-बड़े होनेका कोई अर्थ नहीं है। पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें अतिथियोंके पैर धोनेका काम भगवान्‌ने अपने जिम्मे लिया था। उसी यज्ञमें अग्रपूजा भी उन्होंने स्वीकार की। यज्ञ आरम्भ होनेसे पूर्व यह प्रश्न उठा—'सबसे पहले सबसे अधिक पूज्य मानकर किसकी पूजा की जाय?' बहुत बड़े-बूढ़े लोग—ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध वहाँ बैठे थे। सबकी सम्मति रही—'श्रीकृष्णकी पूजा की जाय।' एक शिशुपालने विरोध किया। भगवान्‌के चक्रने उसको देहविमुक्त कर दिया और उसकी ज्योति भगवान्‌के श्रीचरणोंमें समा गयी। इतने महान् होनेपर भी अतिथियोंके चरण धोनेमें भगवान्‌ने तनिक भी लज्जा अनुभव नहीं की। भगवान् अर्जुनके सारथि बनते हैं, सूतका काम करते हैं, उनके रथके घोड़े हाँकते हैं। अर्जुन भगवान्‌को आज्ञा देते हैं—**'सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।'** भगवान्‌ने रथको दोनों सेनाओंके बीचमें ले जाकर खड़ा कर दिया। आज्ञावाहक सारथिके रूपमें भगवान् अर्जुनका सेवा-कार्य करते हैं। इसी प्रकार जो भी भगवान्‌के अनन्य भजनमें लगे हैं, अनन्य चिन्तनमें लगे हैं, उनका 'योगक्षेम' भगवान् वहन करते हैं।

भगवान् जो कुछ भी करते हैं, मङ्गल ही करते हैं। हाँ, मङ्गलका निर्णय वे स्वयं करते हैं, शरणागतपर नहीं छोड़ते। हमलोग भगवान्‌की शक्तिपर तो विश्वास करते हैं कि वे सर्वशक्तिमान् हैं, हमारा काम कर सकते हैं; पर कौन-सा काम कैसे करना चाहिये—यह निर्णय हम भगवान्‌पर नहीं छोड़ते। हम चाहते हैं—वे वही काम करें, जो हम चाहते हैं और उसी प्रकार करें, जैसे हम बतायें। यह विश्वासकी कमी है। बिना विश्वासके शरणागति सम्भव नहीं है। भगवान्‌पर विश्वास होनेसे ही बिना शर्तके उनके प्रति समर्पण होगा—'आप जो चाहे सो करें।'

भगवान्‌का भक्त भगवान्‌से किसी प्रकारकी शर्त नहीं करता। उसका पक्का विश्वास रहता है कि भगवान् मेरे परम सुहृद् हैं। अतएव भगवान् जो कुछ भी विधान करते हैं, वह मङ्गलमय है—चाहे देखनेमें वह अमङ्गलमय दिखायी दे। सर्जन ऑपरेशन करता है, एक अनजान व्यक्ति किसी प्रकार ऑपरेशन-थियेटरमें पहुँच जाता है। वह सर्जनको चाकू चलाते देख समझता है—'देखो, यह इस व्यक्तिका अङ्ग काट रहा है, कितना अनर्थ कर रहा है! पर जिसका अङ्ग कट रहा है, उसका विश्वास है कि मेरा ऑपरेशन हो रहा है और वह ऑपरेशनके दर्दको सहता हुआ भी प्रसन्न रहता है। सफलतापूर्वक ऑपरेशन सम्पन्न होनेपर उसको बड़ा सुख मिलता है, बड़ी शान्ति मिलती है। ऐसा इसलिये होता है कि उसे सर्जनकी ऑपरेशनक्रियापर विश्वास है। वह समझता है कि अङ्गको काट देनेसे मेरे अंदरका रोग निकल गया, मैं नीरोग हो गया। इसी प्रकार भगवान्‌के शरणागत भक्तकी भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें अनुकूल बुद्धि रहती है और वह प्रसन्न एवं निश्चिन्त रहता है।

---

* अबतक 'शिव' नामसे नित्यलीलालीन श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ही 'कल्याण' शीर्षक स्तम्भ लिखा करते थे, जिसे 'कल्याण'के अधिकांश पाठक बड़े चावसे एवं श्रद्धाके साथ पढ़ते थे। अब उनके प्रत्यक्ष रूपमें न रहनेसे उन्हींके पुराने प्रवचनोंसे इसी प्रकारके प्रेरणात्मक वाक्य देकर इस स्तम्भको चालू रखनेका विचार है, जिससे पाठकोंको वैसी ही सामग्री प्रकारान्तरसे मिलती रहे।—**सम्पादक**

# ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

[ पुराने सत्सङ्गसे ]

## साधना बगीचेका पौधा है; उसे प्रतिदिन जल मिलना ही चाहिये ।

कई लोग कहते हैं—'एक बार सत्सङ्ग सुन लिया, फिर बार-बार सुननेकी क्या आवश्यकता है? सामाजिक कार्योंमें हम देखते हैं—सभा करके परस्पर विचार-विमर्शद्वारा एक निश्चय कर लिया जाता है कि ऐसा करना है और वैसा कर लिया जाता है । उसके लिये बार-बार सभा करनेकी आवश्यकता नहीं होती ।' परंतु हमारी समझसे उनका ऐसा सोचना ठीक नहीं है । सामाजिक कार्य जंगलके वृक्ष हैं, उन्हें प्रतिदिन सींचनेकी आवश्यकता नहीं होती; पर साधना तो बगीचेका पौधा है, उसे प्रतिदिन जल मिलना ही चाहिये । सत्सङ्ग साधनाकी खुराक है । जैसे दोनों समय भोजन करते हैं, इससे शरीरमें स्फूर्ति रहती है, वैसे ही सत्सङ्ग प्रतिदिन होता रहता है तो साधनाको पोषण मिलता रहता है । उसमें स्फूर्ति रहती है तथा वह ठीक-ठिकानेसे चलती रहती है । हाँ, सत्सङ्ग एवं साधनामें संतुलन बैठा लेना चाहिये कि प्रतिदिन इतनी देर सत्सङ्ग करना और इतनी देर साधना करनी । किंतु सत्सङ्ग होना चाहिये प्रतिदिन ।

सत्सङ्गकी कई श्रेणियाँ हैं । प्रथम श्रेणी है—महात्माओंका सङ्ग, द्वितीय श्रेणी है—साधकका सङ्ग और तृतीय श्रेणी है—शास्त्रका सङ्ग । किसी व्यक्तिको बदरीनारायण जाना है । बदरीनारायणकी यात्रा किये हुए व्यक्तिका यदि उसे साथ मिल जाता है तो यह उसके लिये सर्वोत्तम है । ऐसा न होकर यदि उसे बदरीनारायणकी यात्रा करनेवाले ५–७ साथी मिल जाते हैं तो यह उसके लिये पहलेसे कम उपयोगी है । यह भी व्यवस्था न होकर यदि वह बदरीनारायण-यात्राकी पथ-प्रदर्शिकाको साथ लेकर चलता है तो यह उसके लिये तीसरी श्रेणीकी सहायता होती है । ऐसे ही महात्माके सत्सङ्गसे साधनामें सभी आवश्यक सुविधाएँ मिलती चली जाती हैं । महात्माका अनुभव है कि साधनाकी किस अवस्थामें पहुँचनेपर क्या-क्या विघ्न आते हैं और उनका परिहार किस प्रकार करना चाहिये । अतएव महात्माके सत्सङ्गसे साधक निर्भय एवं निश्चिन्त होकर साधनापर बढ़ सकता है । साथी साधकसे साधनामें सुविधा होती है, पर उतनी नहीं । साथी साधकसे बराबर उत्साह मिलता है; जहाँ विघ्न-बाधाएँ आती हैं, वहाँ एक-दूसरेसे विचार-विमर्श हो जाता है । शास्त्रके सत्सङ्गसे भी साधनामें सहायता मिलती है और साधक सफलता प्राप्त कर लेता है । पर जहाँतक हो, प्रथम श्रेणीका अर्थात् महात्माओंका सत्सङ्ग करना चाहिये ।

( २ )

## महापुरुषोंकी महिमा अवर्णनीय है ।

महापुरुषोंकी महिमाका वर्णन नहीं हो सकता । महापुरुष जिस कुलमें उत्पन्न होते हैं, उस कुलके सभी व्यक्ति परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी बन जाते हैं । कम-से-कम तीन पीढ़ी और अधिक-से-अधिक सात पीढ़ीके लिये यह विधान है । महापुरुष जिन पूर्वजोंके लिये तर्पण-श्राद्ध करते हैं तथा महापुरुषोंके लिये कुलके जो व्यक्ति श्राद्ध-तर्पण करते हैं, वे सब-के-सब परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी हो जाते हैं । इस बातको समझानेके लिये अग्निका उदाहरण प्रत्यक्ष है । अग्निमें घास गिरे या घासमें अग्नि गिरे—दोनों रूपोंमें घास अग्निमय हो जाती है ।

महापुरुष जहाँ रहते हैं—जहाँ उनके चरण टिक जाते हैं, वह स्थान पवित्र हो जाता है तथा वह विशेष प्रभाव-

शाली बन जाता है। बिना झाड़े-बुहारे भी वह स्थान पवित्र है। वहाँ बैठकर भगवान्‌का ध्यान करनेसे स्वतः ध्यान लग जाता है। महापुरुषोंकी संनिधिका यदि सौभाग्य मिल जाय तो फिर कहना ही क्या है। महापुरुषकी संनिधिमें बैठकर ध्यान करनेसे ऐसा प्रगाढ़ ध्यान होगा कि मानो भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हों।

संसारमें जितने भी तीर्थ हैं, सब महात्माओंके कारण या उनकी कृपासे ही हैं। वृन्दावन, अयोध्या आदि भगवान्‌के अवतारस्थल होनेसे तीर्थ हैं, किंतु इसमें हेतु तो भक्त-पुरुष ही हैं। भगवान् श्रीकृष्णके अवतारमें वसुदेव-देवकी हेतु बने और भगवान् श्रीरामके अवतारमें दशरथ-कौसल्या। वस्तुतः अवतार प्रधानतः भक्तों—महापुरुषोंके लिये ही होते हैं। इन अवतारस्थलियोंके अतिरिक्त जो तीर्थ हैं, वे महापुरुषोंके निवासस्थल होनेसे ही तीर्थ-स्वरूप बने हैं।

परमार्थ-साधनमें श्रद्धा बहुत ही महत्त्वकी चीज है। ईश्वरमें, महात्मामें, शास्त्रमें जो पूज्यताका भाव है—प्रत्यक्षकी भाँति विश्वास है—उसका नाम 'श्रद्धा' है और प्रत्यक्षसे भी बढ़कर विश्वासका नाम 'परम श्रद्धा' है। महापुरुषोंके प्रति ऐसी ही परम श्रद्धा अर्जन करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

( ३ )

## साधनाके तीन प्रमुख उपकरण।

संध्या, भजन, ध्यान आदि साधनोंमें तीन चीजोंका बड़ा महत्त्व है—नियमित रूपसे प्रतिदिन करना, प्रतिदिन निश्चित समयपर करना तथा उस साधनके प्रति आदर एवं श्रद्धाका भाव रखते हुए करना। बिल्कुल न करनेकी अपेक्षा जो नियमके निर्वाहमात्रके लिये करता है, वह बहुत अच्छा है। इससे सैकड़ोंगुना श्रेष्ठ वह है, जो नियमित समयसे संध्या, भजन, ध्यान आदि करता है। वह समयकी पाबंदीके लिये ऐसा नियम बना लेता है कि जिस दिन समयसे संध्या आदि न हो, उस दिन एक समयका उपवास करना है। इससे भी बढ़कर वह है, जो प्रेमसे इन साधनोंको करता है।

बहुत लोग नियमितता एवं समयका पालन तो कर लेते हैं, पर उनसे 'प्रेम'से साधन नहीं हो पाता। एक समयका उपवास रखना पड़ेगा—इस भयसे नियमितता एवं समयकी पाबंदीका तो पालन हो जाता है, पर प्रेम होना आसान नहीं है। प्रेम होनेसे भगवान् नारायणके दर्शनसे जो हमारी दशा हो, वैसी ही दशा संध्याके समय भगवान् सूर्यनारायणके ध्यान एवं दर्शनसे होनी चाहिये। वास्तवमें साधनामें प्रेमका विशेष महत्त्व है। हम गायत्रीका जप करते हैं—मुँहसे मन्त्रका उच्चारण करते हैं और अँगुलियोंसे मालाके मनिये खिसकाते जाते हैं, यह नियम-पालनमात्र होता है। यदि प्रेमपूर्वक गायत्री-जप हो तो उसका महत्त्व अपनेसे प्रकट होता है।

यही बात ध्यानके सम्बन्धमें है। ध्यानमें नियमितता एवं समयकी पाबंदीका स्थान बहुत गौण है। उसमें प्रेम ही मुख्य है। प्रेम होनेसे किसी वस्तुका स्मरण-चिन्तन होता है और स्मरण-चिन्तनसे वह वस्तु मनके नेत्रोंके सामने प्रत्यक्षकी भाँति उपस्थित रहती है। हम भगवान्‌का ध्यान करने बैठें और हमारा भगवान्‌में प्रेम नहीं है—अर्थात् भगवान्‌के साथ हमारे हृदयका संयोग नहीं है—तो भगवान्‌के स्वरूपकी धारणा हमें नहीं होगी। हमारे मनमें जिस वस्तुके प्रति प्रेम है, भगवान्‌के ध्यानके समय उस वस्तुका ही ध्यान हमसे होगा, भगवान्‌का नहीं। अतएव नियमितता एवं समयकी पाबंदीसे पहले प्रेमको स्थान देना चाहिये।

( ४ )

## भक्त एवं भगवान्‌का स्मरण दो नहीं हैं।

प्रश्न किया जाता है कि 'भगवान्‌के भक्तोंके गुण-प्रभाव-चिन्तन आदिसे विशेष लाभ होता है तो फिर

भक्तोंका ही चिन्तन क्यों न किया जाय ?' इसका उत्तर यह है कि भक्तोंके गुण-प्रभाव-चिन्तनकी बात सिद्धान्ततः वैसी ही है। वास्तविक भक्तके चिन्तनसे विशेष लाभ होगा ही। पर यदि भक्तमें ही गड़बड़ी निकल आयी तो ध्यान करनेवालेका परिश्रम व्यर्थ जाता है। इसलिये ध्यान तथा चरित्र-गुण आदिका चिन्तन भगवान्‌का ही करना चाहिये, यह निरापद मार्ग है।

कौन वास्तविक भक्त है, यह कहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। महात्माको क्या वस्तु मिल जाती है, यह बात परमात्माको प्राप्त पुरुष भी नहीं बता सकते। भगवान्‌ने भी गीतामें नहीं बतलाया, केवल इतना ही कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

उस लाभकी महत्ता बतला दी, पर उस लाभका स्वरूप क्या है, यह नहीं बतलाया। 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी···वह निन्दा-स्तुतिमें सम है'—आदि कहकर भगवान्‌ने उसके लक्षण बतलाये; पर उस लाभको स्पष्ट नहीं किया, जो उसे प्राप्त है। वास्तवमें वह स्थिति स्वसंवेद्य है, वह वाणीका विषय नहीं है। अतएव भक्तकी पहचान होना बड़ा कठिन है। ऐसी स्थितिमें सरल मार्ग यही है कि सङ्ग तो उस व्यक्तिका करे, जिसके समीप रहनेसे आसुरी वृत्ति कम हो तथा दैवी-सम्पदाका विकास होता हो; और स्वरूपका ध्यान, नाम-चरित्र-गुण आदिका चिन्तन भगवान्‌का करे। इस बीचमें भक्तका स्मरण-चिन्तन हो तो उसे भगवान्‌के चिन्तनमें सहायक समझे, विरोधी नहीं। वास्तवमें भक्त एवं भगवान्‌का स्मरण दो नहीं हैं, पर होना चाहिये वास्तविक भक्तका स्मरण।

# आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

**जीभसे निरन्तर नाम लीजिये, मनसे निरन्तर उन्हें ही याद कीजिये और पापसे मृत्युकी तरह डरिये।**

छोटी-मोटी टान (आकर्षण), सत्सङ्ग, भजन, दोषकी निवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, प्रीतिका अङ्कुर एवं प्रेम—ये नौ सीढ़ियाँ हैं। इसमें हमलोग तीसरी सीढ़ीपर ही हैं और उसपर भी अपना पाँव ठीकसे नहीं जमाते। इसीलिये हमलोग चौथी सीढ़ी अर्थात् 'सब दोषोंसे मुक्ति' प्राप्त नहीं कर पाते। अतएव भजन करना है। खूब ठीकसे मन लगाकर श्रवण-कीर्तन, स्मरण-जपका तार निरन्तर चले। फिर आगेका काम तो अपने-आप सब हो जायगा।

खूब भजन कीजिये, यही युद्धसे बचनेका उपाय है। नहीं तो मृत्यु तो एक दिन आयेगी ही। वह मृत्यु ही अन्तिम मृत्यु हो—उसके बाद फिर मरना ही न पड़े—ऐसा उपाय बुद्धिमान्‌को करना चाहिये। इसमें कोई परिश्रम नहीं है। भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं; उनसे जो चाहिये, वही वे देंगे। सामने मृत्यु खड़ी हो, ऊपरसे बमके गोले पड़ने हों, पर, सच मानिये, यदि आप उन्हें हृदयसे पुकारें कि 'प्रभो! मुझे बचा लो' तो फिर बमके गोले व्यर्थ हो जायँगे—उसी क्षण, जब कि कलकत्ता जलता रह सकता है। आपकी देहको एक चिनगारी भी स्पर्श नहीं करेगी। बिलकुल ऐसा हो सकता है। पर होगा विश्वास करके, उनके चरणोंमें अपनेको सौंपकर, उनका ही एकमात्र भरोसा करके, उनको याद करनेसे।

वे चाहते हैं एक बात—देखते हैं केवल यही कि इसका सच्चा विश्वास है कि नहीं। विश्वास होनेपर वे सब कर देते हैं। इसी प्रकार धन चाहिये तो एक क्षणमें आपको करोड़पति, अरबपति, असंख्य-

पति बना सकते हैं। पर यहाँ भी वे देखेंगे कि 'इसका विश्वास हमपर है कि नहीं। धन चाहता है, कोई बात नहीं; पर यह हमसे चाहता है कि नहीं'—ठीक मानिये केवल उनसे चाहनेपर अर्थात् 'प्रभु ! मैं तो आपसे लूँगा' यह ठीक चाहनेपर वे परीक्षा करके देखेंगे। यदि आप डिगते हैं तो नहीं देंगे; पर यदि पास हो जायँगे तो उसी क्षण सुदामाकी तरह धन देकर, असीम ऐश्वर्य देकर आपको कृतार्थ कर देंगे। इसी प्रकार ज्ञान चाहिये, ज्ञान देंगे; मोक्ष चाहिये तो मोक्ष देंगे और भगवत्प्रेम चाहिये तो भगवत्प्रेम देंगे। मतलब यह है कि किसी भी प्रकार-से एक बार उनका पल्ला पकड़ लीजिये तो फिर सारी कामना मिटाकर सबसे ऊँची चीज—अपना प्रेम ही आपको देंगे। इसलिये किसी भी प्रकार-से हो—सकाम-निष्काम, जीभसे निरन्तर नाम लीजिये, मनसे निरन्तर उन्हें ही याद कीजिये और पापसे मृत्युकी तरह डरिये, बचनेकी पूरी चेष्टा कीजिये। ये ही तीन काम करने चाहिये।

× × ×

कलियुगका समय ही कुछ ऐसा है कि भजनमें प्रवृत्ति घटती जा रही है और बिना नियम काम होता नहीं। जो भी कहता है कि 'हमसे भजन होता नहीं' उसे चाहिये कि वह नियमित संख्यामें जप हुए बिना भोजन न करनेका नियम दृढ़तासे पकड़ ले; फिर भजन होने लग जायगा। अर्थात् अपने काम-काजका हिसाब देखकर यह निश्चय कर ले कि हमें इतनी माला फेरनी है। अब किसीका मुलाहिजा न रखकर यह नियम बना लेना चाहिये कि 'प्रातःकाल भोजन करनेके पहले इतनी माला जपकर ही भोजन करूँगा, चाहे कुछ हो जाय। फिर रातमें भोजन इतनी माला और जपकर ही करूँगा तथा सोनेसे पहले फिर इतनी माला जप करके ही सोऊँगा।' अब जहाँ रोटीकी अड़चन लगी—दो-तीन बार भूल हुई और उपवास हुआ कि मन बदमाशी छोड़ देगा। दस मालाएँ सुबहके भोजनके पहले, दस शामके भोजनके पहले और दस सोनेके पहले—इस प्रकार तीस मालाएँ आसानीसे हो सकती हैं। इतना न हो पावे तो आठ-आठका नियम रखकर चौबीस माला प्रतिदिनका नियम ले लें। कुछ नियमकी पाबंदी बिना आरम्भमें भजनमें अड़चन लग ही जाया करती है। कुछ कड़ाईसे नियम बना लें, फिर भजन होने लग जायगा। मान लें, प्रतिदिन यदि २० मालाका ही नियम आप बना लें तो बीस तो हो ही जायँगी और बिना नियम कभी ६४ माला भी जप लेंगे और कभी दो-चार भी नहीं होंगी।

प्रभुकी कृपापर विश्वास होनेसे तो भजन अपने-आप होने लग जायगा। पर जबतक विश्वास नहीं, तबतक मनके साथ जबर्दस्ती करनी ही पड़ेगी; नहीं तो मनकी मलिनता मिटेगी नहीं और मलिनता मिटे बिना विश्वास भी नहीं होगा। वृत्ति न लगनेपर भी जीभ यदि नाम-उच्चारण करेगी तो भजन हो जायगा।

## संतका विश्वासपूर्वक सङ्ग करें और उनकी इच्छाके अनुसार अपना जीवन बितायें।

मनुष्यको अपना मन ही धोखा देता है। अनादि-कालसे इस धोखेको मनुष्य जानता हुआ भी अनजान बना रहता है। अपनी त्रुटि, अपना दोष वह भगवान्पर तथा संतपर लादना चाहता है। भगवान् एवं संतका द्वार सदा-सर्वदा-सर्वथा सबके लिये उन्मुक्त है। कुछ भी नहीं चाहिये, बस, उस द्वारमें प्रवेशकी इच्छा होनी चाहिये। पर हम भीतरसे तो संसारमें चिपके रहना चाहते हैं, ऊपरसे भगवान्के, संतके द्वारमें प्रवेश करनेकी इच्छा प्रकट करते हैं। बस, यही भूल है और इसी भूलको

मन ऐसे सुन्दर ढंगसे सामने रखता है कि मनुष्य भूल ही जाता है। तरह-तरहकी युक्तियोंके फेरमें पड़कर यह उद्गार प्रकट करता है—'क्या करूँ, मेरी परिस्थिति ही ऐसी है कि मैं सत्सङ्गसे वञ्चित हो रहा हूँ।' वह यह कभी नहीं विचार पाता कि 'अरे मन ! तू मुझे व्यर्थ क्यों ठगता है ? तू चाहता तो है नहीं और बातें बनाता है।' हमलोगोंके साथ यही बात है। हमारा मन हमको धोखा दे रहा है। हमारा मन तरह-तरहके कर्तव्य सामने रक्खेगा और संतके सङ्गसे आपको वञ्चित रखनेकी चेष्टा करेगा। इसका इलाज या तो हम कर सकते हैं अथवा भगवान्। भगवान्की अहैतुकी कृपासे जब किसी दिन संसारका मोह भङ्ग होगा, तब दीखेगा कि मनुष्यका एक ही कर्तव्य है—भगवान्से प्रेम करना अथवा संतसे प्रेम करना। बस, इस प्रेममें साधक बनकर संसार रहे तब तो ठीक; नहीं तो अपने हाथसे इसमें आग लगा देना है। इसके पहले बिना पेंदीके लोटेकी तरह कभी इधर, कभी उधर लुढ़कना है।

भगवान्की कृपाका आश्रय लेकर हम संतका विश्वास-पूर्वक सङ्ग करें और उनकी इच्छाके अनुसार अपना जीवन बितायें। पर यह होगा हमारे किये। हम अपनी इच्छा छोड़कर प्रभु-इच्छाके आगे सिर नवायें। इसीके लिये संतकी शुद्ध सहायताकी आशा रक्खें। संतको अपनी इच्छाके अनुसार चलानेकी इच्छा सर्वथा भीतरी तहसे मिटाकर उनकी इच्छाके अनुसार चलनेकी चेष्टा करें। देखें, एक लौकिक साधारण माँ भी अपने छोटे बच्चेको उस कामके लिये आज्ञा नहीं देती, जिसे बच्चा कर नहीं सकता। फिर भगवान् या संतके द्वारा तो यह असम्भव है। आप ऐसी कल्पना ही करना छोड़ दें कि 'वे मुझे वह काम करनेको कहेंगे, जो मैं कर नहीं सकता।' निश्चय मानिये, वे वही करनेको कहते हैं, कहेंगे, जो आपकी शक्तिके अंदर—आपके द्वारा सम्भव है। यह नहीं करके यदि आप हठ करेंगे कि 'मैं तो यही करूँगा, मुझसे यही काम होगा, दूसरा नहीं होगा, मुझे यही करने दीजिये'—तो अशान्ति मिटनी कठिन है।

× × ×

संत हमारे हाथके यन्त्र तो हैं नहीं कि हम जैसे घुमायें वैसे-वैसे वे घूम जायँ। संत तो श्रीकृष्णके हाथके यन्त्र हैं। सर्वथा श्रीकृष्णकी प्रेरणासे ही वे कुछ भी करेंगे ! दुनिया राजी हो या नाराज हो, इससे उनको मतलब नहीं; इस बातको श्रीकृष्ण समझें। तथा श्रीकृष्णकी इच्छा परम मङ्गलमयी है; उनके यहाँ भूल भी नहीं, पक्षपात भी नहीं। अतः यदि हम संतसे उत्तर चाहते हैं, तो इसके लिये श्रीकृष्णके प्रति आन्तरिक, सच्ची एवं व्याकुलताभरी प्रार्थना ही अचूक साधन है। वे सच्ची प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। यदि नहीं सुनते तो हमारी प्रार्थनामें निष्कपटभावकी कमी कहीं-न-कहीं अवश्य है। अर्थात् हम जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, उसके अन्तरालमें कोई दूसरी बात छिपी हुई है, अथवा हमारी प्रार्थनाकी अपूर्तिमें ही श्रीकृष्णने विशेष मङ्गल रच रक्खा है।

× × ×

संतके पास आनेमें हमारा मन ही हमको बाधा दे रहा है। जबतक मलिन स्वार्थको हम नहीं छोड़ेंगे, तबतक शान्त मनसे संतके पास रह भी नहीं सकेंगे। संत किसीको न निकालते हैं न बुलाते हैं। वे तो जो आता है—वह चाहे कोई हो—उसे अपने हृदयका आसन देते हैं। जो उस आसनको छोड़कर अन्यत्र सुख खोजने जाता है, उसे रोकते भी नहीं। वे हृदयका द्वार खोले हुए रहते हैं—जो चाहे आ जाय, जो चाहे चला जाय।

## दृढ़ विश्वासके साथ भगवान्को पुकारिये, नामका जप कीजिये और कभी झूठ न बोलिये।

भगवान्का जो सम्बन्ध एक बहुत बड़े संतसे है,

वही सम्बन्ध उनका हमसे भी है। यदि हम प्रेमसे, दृढ़ विश्वासके साथ उन्हें पुकारेंगे तो लोक एवं परलोक—दोनों जगह ही वे बिल्कुल खुले हाथ हमारी सहायता कर सकते हैं और एक बार भी यदि हमारी उनसे ठीक-ठीक जान-पहचान हो गयी तो सदाके लिये हमारे सभी दुःख सर्वथा मिट जायँगे। अतः दृढ़ विश्वासके साथ उन्हें पुकारिये। जब समय मिले, तभी मन-ही-मन उन्हें पुकारिये।

( २ ) अन्तःकरण मलिन होनेके कारण भगवान्‌की पूर्ण कृपा हमपर होनेपर भी हम उस कृपाका अनुभव नहीं कर रहे हैं। अतः एक काम अवश्य करना चाहिये। काम भर बोलनेके बाद जीभसे निरन्तर भगवान्‌का जो नाम प्यारा लगे, उसे उच्चारण करते रहना चाहिये। इसमें पहले नियमकी आवश्यकता होती है। इसलिये हम अपने पास एक माला रक्खें और फिर यह नियम कर लें कि 'सोनेसे पहले-पहले एक लाख नामका जप अवश्य कर लूँगा।' एक लाखका नियम लेनेमें यदि कुछ अड़चन प्रतीत हो तो पचास हजारका नियम ले लें।

( ३ ) खूब सावधानीसे यह चेष्टा करें कि मजाकमें भी कभी झूठ बात नहीं बोली जाय।

## परमार्थकी पगडंडियाँ

( नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय श्रीभाईजी ( श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) के अमृत-वचन )

**तुम अपना जीवन श्रीभगवान्‌के चरणोंमें न्योछावर कर दो, फिर उनकी कृपासे सदा मस्ती बनी रहेगी। शोक, विषाद, दुःख, क्लेश, कष्ट, संताप, भय, उद्वेग आदि कुछ रहेंगे ही नहीं—यह निश्चय है। अपना सारा मन, सारी बुद्धि, सारा जीवन—प्रत्येक श्वास उन्हींके अर्पण कर देना चाहिये। बहुत-बहुत प्रसन्न रहना चाहिये। भगवान्‌का आश्रय लेनेवाला सदा प्रसन्न ही रहता है। आनन्दघन भगवान्‌के आश्रयमें तो नित्य आनन्द ही रहा करता है। उनके पास आनन्दका अभाव वैसे ही कभी नहीं होता, जैसे सूर्यके पास प्रकाशका अभाव नहीं होता।**

× × × × ×

**तुम भगवान्‌के मङ्गल-विधानमें सदा-सर्वदा प्रसन्न रहना चाहते हो तथा वे अपने मनकी जो-कुछ करते हैं, उसीमें तुम अपना मङ्गल मानते हो, यह बहुत ही उत्तम विचार है। भगवान् हमारे ऐसे विचारोंसे बहुत प्रसन्न होते हैं। भगवान्‌की ओरसे सदा आशावान् तथा जगत्‌की ओरसे निराश होना चाहिये। जगत्‌की आशा सदा विफल तथा दुःखदायिनी होती है और भगवान्‌की आशा सदा सफल तथा सुखमयी है।**

× × × × ×

**घरमें अतिथिकी भाँति रहना तो बहुत उत्तम है। वास्तवमें घर अपना है ही नहीं। जिसके मनसे घर और संसार निकल जाता है, उसका मन-मन्दिर भगवान्‌के लिये आप ही सज जाता है। मनको संसारसे खाली करना ही भगवान्‌के लिये सजाना है। भगवान् किसी भी पूजाकी वस्तुको नहीं चाहते; वे हैं चाहसे हीन। वे सहज प्रेमसे सना खाली घर चाहते हैं। ऐसा घर पाते ही वे उसमें सदाके लिये बस जाते हैं।**

× × × × ×

**तुम नित्य सत्य सच्चिदानन्दघन भगवान्‌के चरणोंमें अपना चित्त समर्पण करके सदाके लिये निर्भय और निश्चिन्त हो जाओ। भगवान् जीवन-मरण, लोक-परलोक, भूत-भविष्य—सभीमें सदा साथ रहते हैं। तुमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। तुम सहज ही उनकी शरण ग्रहणकर कृतार्थ हो सकते हो।**

वे सर्वसमर्थ सदा ही परम सुहृद् हैं। उनकी कृपाकी छत्रछायामें पहुँच जानेपर मनुष्यका घोर संताप सदाके लिये मिट जाता है और वे सदा, सबको अपनानेके लिये तैयार हैं। सच्चा भरोसा तो उसीका है, जो हर हालतमें साथ रहता है। इससे उनसे ही यह प्रार्थना करनी चाहिये—

कुटिल कर्म लै जाहि मोहि, जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
तहँ-तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंडकी नाईं॥

अतएव अन्य सब आशा-भरोसा-विश्वास छोड़कर, एकमात्र भगवान्‌पर ही निर्भर होकर, उन्हींका आशा-भरोसा-विश्वास करना चाहिये।

× × × × ×

मैं खुले शृङ्गारसे डरता हूँ तथा किसीको भी उसके पठन-पाठनकी सलाह नहीं देता। मैं आजकल इसलिये और भी डरा हुआ हूँ कि बहुत-से लोग अपनेको प्रेमी, त्यागी, महापुरुष, संत तथा परम भागवत घोषित करते हुए श्रीराधाकृष्ण अथवा गोपी-प्रेमका उदाहरण देकर अपनी वासना-पूर्तिका प्रयास करते हैं और भोले लोग उनके द्वारा ठगे जाते हैं। इस स्थितिमें शृङ्गारके पदोंका प्रचार ऐसे लोगोंके लिये उत्साह देनेवाला तथा इनके पापका समर्थन करनेवाला मान लिया जाता है। मेरा यह डर सप्रमाण है। इसीलिये मैं बहुत सावधान रहता हूँ। मेरी इस सावधानीके पीछे यही भाव है कि भगवान्‌के पवित्र प्रेमके नामपर कमजोर हृदयके लोगोंकी वासनाको जरा भी जागनेका अवसर न मिले।

× × × × ×

'अभय' दैवी-सम्पदाका पहला गुण है। जो परम अभयस्वरूप भगवान्‌के भयहारी चरण-कमलोंके शरण हो जाता है, उसके पास न पाप-ताप आ सकते हैं, न उसे पतन या नरकका ही भय हो सकता है। वह महापापी भी तुरंत पुण्यात्मा भक्त होकर शाश्वती शान्तिका अधिकारी हो जाता है। भय-शोक तथा पतन-नरक तो तभीतक वहाँ हैं, जहाँ मनमें भोगोंका आश्रय है, जो पद-पदपर भय-शोक उत्पन्न करनेवाले तथा दुःखयोनि ही हैं। निर्भयस्वरूप भगवान्‌का शरणागत तो निर्भय ही नहीं होता, वह सारे जगत्‌को अभय-दान करनेवाला बन जाता है। भगवान्‌का होकर जो एक बार भी भगवान्‌को पुकार उठता है, भगवान् उसे सबसे अभय कर देते हैं। यह भगवान्‌का विरद है— 'मम पन सरनागत भय हारी।'

× × × × ×

यह सत्य है कि भगवान् श्रीकृष्ण सबके परम प्रियतम हैं; वे आत्माके भी आत्मा हैं, परम पति हैं। इस भावसे उनका भजन बन पड़े तो वह बहुत उच्च श्रेणीका है—इसमें जरा भी संदेह नहीं है; परंतु यह भाव है बहुत कठिन। यह भाव था गोपीजनोंमें। श्रीचैतन्यमें भी था; पर अन्य लोगोंमें कहाँ, कितना, किसमें था, कुछ कहा नहीं जा सकता। भगवान्‌के परम प्रियतम और परम पति होते हुए भी जबतक 'निज-सुख'की इच्छाका लेश है, तबतक इस भावसे उनका भजन होना बहुत कठिन है। फिर आजकलके मनुष्य बहुत ही दुर्बल मनके हैं। भगवान् तथा भगवत्प्रेमके लिये ही वे इस तरहके मार्गपर आते हैं, परंतु राग-द्वेषयुक्त तथा वशमें न किये हुए मन-इन्द्रिय उन्हें भगवान्‌से हटाकर गंदे लौकिक भोगोंमें प्रवृत्त कर देते हैं। इसलिये भगवान्‌के नामपर भी उन विषयोंसे अलग रहना ही निरापद है, जिनसे जरा भी वासनाके जाग्रत् होनेका डर हो।

× × × × ×

असली अस्वस्थता तो मनकी होती है और उसी मानसिक अस्वस्थताके कारण मनुष्यके द्वारा विभिन्न अवाञ्छनीय कार्य होते हैं और उसीके कारण उसे भय, विषाद, क्लेश और शोक आदि होते हैं। मनुष्य जिस विषयका चिन्तन करता है, उसीमें उसकी आसक्ति होती है और जिसमें आसक्ति होती है, उसीका

विशेष चिन्तन होता है एवं उसीके अनुसार वह नरक ( दुःख ), स्वर्ग ( सुख ), भगवान् ( परम आनन्द ) की ओर जाता है। तीन प्रकारके चिन्तन हैं—असत्-चिन्तन ( पाप या अशुभ-चिन्तन ), सत्-चिन्तन ( पुण्य अर्थात् पवित्र अथवा शुभ-चिन्तन ) और भगवत्-चिन्तन। इसमें असत्-चिन्तन तो कभी नहीं होना चाहिये। यह तो दुःख या नरकका पथ है। सत्-चिन्तन सुखकारक है, इससे वह करना चाहिये। परंतु सर्वोत्तम है—भगवत्-चिन्तन, जिसके होनेसे असत्-चिन्तनका स्वाभाविक ही वैसे ही नाश हो जाता है, जैसे सूर्यका प्रकाश होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है और सत्-चिन्तन या दैवी-सम्पत्ति उसी प्रकार आप ही आ जाती है, जैसे सूर्यके साथ प्रकाश आता ही है। देव जहाँ होंगे, वहाँ दैवी सम्पदा होगी ही। जहाँ वर्फ है, वहाँ सर्दी होगी ही; अग्नि है, वहाँ गर्मी होगी; गुलाब है, वहाँ गुलाबकी सुगन्धि होगी। इसी प्रकार जहाँ भगवान् होंगे, वहाँ भगवान्‌के दिव्य गुण होंगे ही। अतएव जिस-किसी प्रकारसे भी हो, भगवान्‌का चिन्तन—उनकी लीला, उनके ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौहार्द, स्वरूप, गुण, नाम—किसीका भी चिन्तन—करते रहना चाहिये। इस चिन्तनमें जब रस—आनन्द आ जायगा, तब तो वह अपने-आप ही होगा, छुड़ाये भी नहीं छूटेगा।

× × × × ×

पहले मनुष्यको बिना मनके ही सही, भगवत्-चिन्तन करना चाहिये। × × × × बस, भगवच्चिन्तन करे—प्रतिक्षण भगवान्‌में मन रहे, भगवान् ही मनमें बसे रहें। जगत्‌को, प्राणिमात्रको, पदार्थमात्रको भूल जाओ; संसारकी परिस्थितियोंका कोई भी प्रभाव जीवनपर न रहे। एकमात्र प्रभु ही प्राण, आत्मा, सुख-स्मृति, जीवन—सब-कुछ हो जायँ।

× × × × ×

भगवान् किसीके पूर्व जीवनको नहीं देखते। वह पुण्यमय है या पापमय, शुभ था या अशुभ—इसकी ओर भगवान् ध्यान नहीं देते। वे देखते हैं मनकी वर्तमान स्थितिको। इस समय यदि हमारा मन श्रीभगवान्‌को चाहता है, नित्य उनको अपनेमें बसाये रखना चाहता है, उनकी मधुर स्मृतिमें डूबा रहना चाहता है और उसकी यह चाह यदि यथार्थ है तो भगवान् अपनी सहज स्वाभाविक कृपासे उसके हृदयके पुराने पापोंका तुरंत नाश करके उसके हृदयमें बस जाते हैं और नित्य-निरन्तर उसे भगवान्‌की संनिधिका अनुभव होता रहता है। इसलिये अपने पहलेके घृणित जीवनकी याद करके किसीको भी जरा भी निराश नहीं होना चाहिये। जैसे सूर्योदय होते ही अमावास्याका घोर अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही मनमें भगवान्‌के आते ही तमाम तम-राशि भस्म हो जाती है। भगवान्‌की कृपाकी महान् शक्ति हमारे पुराने पापोंकी शक्तिसे कहीं अधिक है।

× × × × ×

तुम चाहते हो कि मैं प्रभुको एक क्षणके लिये भी न भूलूँ—यह बहुत सुन्दर मनोरथ है। जो प्रभुको नहीं भूलता, उसे अनुभव होता है कि प्रभु भी मुझको कभी नहीं भूलते। प्रभु तो अब भी नहीं भूलते, हम ही उनको भूले हुए रहते हैं, इससे हमें जान पड़ता है कि प्रभु हमें भूल रहे हैं। मनुष्य यदि ध्यान दे तो उसे पता लगेगा कि प्रभु हर हालतमें सदा समीप रहते हैं, साथ रहते हैं, नित्य हृदयमें रहते हैं तथा एक क्षणके लिये भी इधर-उधर नहीं जाते—

चलत-चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात। हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत-उत जात॥

गोपी-हृदयका यह अनुभव सर्वथा सत्य है। इसका मधुर अनुभव सदा करते रहना चाहिये। यह अनुभव भी प्रभुकी कृपासे ही हुआ करता है। जो मनुष्य उस महान् कृपाका अनुभव नहीं करता, वही उससे वञ्चित रहता है।

× × × ×

प्रभुकी स्मृतिके समान सुख अन्य किसी भी वस्तु या स्थितिमें नहीं है। परंतु यह सुख उन्हींको प्राप्त होता है, जिनका प्रभुके पावन पदारविन्दोंमें प्रेम होता है। प्रभुकी स्मृति तो उन्हें अपना वैरी माननेवालोंके मनमें भी होती है और उस स्मृतिसे उनकी मुक्ति भी होती है, परंतु स्मरणकालमें उन्हें सुख नहीं मिलता; क्योंकि उनकी स्मृतिमें माधुर्य नहीं है, अनुराग नहीं है। तुम चाहते हो कि 'नित्य एक-सी स्थिति बनी रहे, प्रभुका मनसे कभी वियोग हो ही नहीं, हृदयमें दूसरी कोई स्मृति आये ही नहीं'—तुम्हारी यह चाह बहुत ही श्रेष्ठ है। भगवान्‌की बड़ी कृपासे ही ऐसी चाह हुआ करती है। चाह यदि प्रबल होती है, खास करके भगवत्-सम्बन्धी, तो वह अवश्य पूरी भी होती है। भगवान् हमारी अपनी वस्तु हैं। वे किसी कर्मके फल नहीं हैं। अतः चाह तीव्रतम होते ही वे मिल जाते हैं। यह सत्य है कि प्रभुकी सहज सुहृदता सदा ही सबपर बनी हुई है और यह अनन्त है, असीम है। अतएव प्रभुकी कृपासे कोई भी वञ्चित नहीं है। मनुष्यके लिये यह चाह बड़ी मङ्गलमयी है कि 'भगवान् सदा मेरे पास बने रहें, कभी क्षणभरके लिये भी मुझे छोड़कर इधर-उधर न जायँ।' भगवान् असलमें सदा पास रहते ही हैं, उनके बिना हम रह ही नहीं सकते; पर उनका सदा पास रहना हम अनुभव नहीं करते। कभी-कभी कुछ झाँकी-सी होती है, फिर भूल जाते हैं। भगवान् कृपा करके कभी प्रेमकी आँखें दे दें तो फिर सदा-सर्वत्र वे-ही-वे दीखने लगें। 'जित देखौं तित स्याममयी है' की स्थिति हो जाय।

× × × ×

जगत्‌के जितने अनुकूल विषय हैं, पहले मिलनेके समय वे नये-नये रूपमें आकर्षक, प्रिय तथा आनन्ददायक होते हैं; पर सदा पास रहनेपर उनमें कोई आकर्षण नहीं रह जाता, न वैसी प्रियता तथा आनन्द ही रहता है। वे पुराने ( बासी ) हो जाते हैं। पर भगवान् कभी बासी नहीं होते, पुराने होकर भी वे नित्य नवीन रहते हैं। प्रतिक्षण उनका सौन्दर्य खिलता तथा नये-नये आकर्षणको लिये प्रकाशित होता रहता है। इसलिये उनका चिन्तन कभी छूटनेवाला नहीं होता।

× × × ×

'तुम अपना जीवन प्रभुका बना देना चाहते हो, अलग तुम्हारी कोई वासना-कामना न रह जाय, सारी क्रिया केवल प्रभुप्रीत्यर्थ हो' तुम्हारा यह भाव बहुत ही श्रेष्ठ है। जो ऐसा मानते हैं और चाहते हैं, अन्तर्यामी सर्वदा कृपा करनेवाले प्रभु उनको निश्चय ही अपना लेते हैं। तुमको यह कभी नहीं मानना चाहिये कि तुम प्रभुके चरणकमलोंसे वञ्चित हो। तुम विश्वास करो और उनके मृदुल अरुण चरण-युगलोंको नित्य अपने समीप अनुभव करो। प्रभुकी कृपा हमलोग कम मानते हैं, इसीसे उनका कम अनुभव होता है। वास्तवमें कृपाकी कोई सीमा नहीं है—कहीं ओर-छोर नहीं है। 'प्रभु कृपा करके सदाके लिये अपनी चरण-रज बना लें'—यह इच्छा बहुत ही उत्तम है। पर तुम्हें विश्वास करना चाहिये कि 'भगवान्‌की मुझपर अनन्त कृपा है और वे मुझे अपनी चरण-रज अवश्य बना लेंगे।' अभी अपनेको उनकी चरण-रज समझ लो तो अभी बने-बनाये ही हो। जीवके अपने सारे अहंकारका त्याग हुआ कि वह चरण-रज हो गया।

× × × × ×

तुम विश्वास करो; प्रभुने तुमको अपना लिया है। जो यह विश्वास कर लेता है,—वह अपनेको प्रभुका अनुभव करता है। फिर उसपर किसीका प्रभुत्व नहीं रह जाता; किसी भी वस्तु, स्थिति, अवस्था, प्राणी, पदार्थका कुछ भी प्रभाव उसपर नहीं पड़ता; उसे सुखकी स्पृहा नहीं होती—दुःखका उद्वेग नहीं होता। वह नित्य-निरन्तर प्रभुके साथ घुला-मिला रहकर अपनी स्थितिमें मस्त रहता है; किसीका भी उसपर कोई असर नहीं होता। वह कहीं लिप्त नहीं होता। जन्म-मरण, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक—सब उसके लिये समान हो जाते हैं।

× × × ×

खूब प्रसन्न रहो और खूब भगवान्‌का स्मरण करो। दुनियाके सुख-दुःखकी जरा भी परवा न करके एकमात्र भगवान्‌में ही सारे सुखोंको देखो और भगवान्‌को हृदयसे एक क्षणके लिये भी मत हटने दो। भगवान्‌का स्मरण ही परम पुण्य, परम सम्पत्ति और परम सौभाग्य है तथा भगवान्‌का विस्मरण ही घोर पाप, भयानक विपत्ति और महान् दुर्भाग्य है। अतएव आसक्ति—ममता भगवान्‌में करो।

× × × ×

सबको यह सुदृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि 'भगवान्‌की कृपा हमपर असीम और अनन्त है।' सांसारिक स्थिति चाहे जो जैसी रहे, जीवन-मरण, संयोग-वियोग—सभीमें भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपा भरी है, इस निश्चय और विश्वासको दृढ़ करके नित्य-निरन्तर हर अवस्थामें परम सुखी रहना चाहिये, अपने मनमें जरा भी दुखी नहीं होना चाहिये। 'भगवान् प्रतिक्षण हमारे साथ हैं—सभी अवस्थाओंमें'—इस बातका पहले निश्चय और फिर अनुभव करना चाहिये।

× × × ×

मनसे प्रतिकूलताको निकालकर, भगवान्‌की कृपाको देखते हुए, सर्वत्र, सब समय अनुकूलताका अनुभव करके सुखी रहना चाहिये। भगवान् हमको कभी नहीं भूलते, हम ही उन्हें भूलते रहते हैं। वे तो अकारण सुहृद् हैं। संयोग-वियोग तो संसारका स्वरूप है। संसारकी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसका सदा संयोग रहे और परमात्मा ऐसी वस्तु है, जिसका कभी वियोग नहीं होता। उनका नित्य संयोग रहता है, जीवन-मरण सभीमें वे साथ रहते हैं। इस संयोग-सुखका अनुभव करके सदा सुखी रहना चाहिये।

## सुखी कौन ?

### [ पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश ]

( प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी )

सुखी किसको माना जाय, यह एक विचारणीय प्रश्न है। लोग यह समझते हैं कि जिसके पास विशेष धन है, अनेक नौकर-चाकर हैं, अनेक मोटर-कारें हैं अथवा जो ऊँचे-ऊँचे पदोंपर आसीन हैं—जैसे जज, कलक्टर, कमिश्नर, गवर्नर आदि—शायद वे लोग बहुत सुखी हैं; और जिसके पास ये सारी सुविधाएँ या कोई सुविधा नहीं है, वह दुखी, दीन और दरिद्र है। किंतु ये सब बातें केवल एक कोरी कल्पना हैं। ऐसे सुसम्पन्न व्यक्तिसे, जिसे आप सुखी समझते हैं, जाकर आप पूछें तो वह यही उत्तर देगा कि 'भाई ! मैं सुखी नहीं हूँ। जिसे तुम सुख समझते हो, वह केवल विडम्बना है।' जनसाधारणके विचारमें ये सारी वस्तुएँ सुख देनेवाली प्रतीत होती हैं; किंतु जिनको ये वस्तुएँ प्राप्त हैं, वे अनेकानेक चिन्ताओंसे ग्रस्त हैं। चिन्ताओंका पहाड़ उनके सामने खड़ा है और उन्हें संतोष नहीं है। एक इच्छाकी पूर्ति हुई, एक चिन्ता दूर हुई कि दूसरी इच्छा, दूसरी चिन्ता सम्मुख उपस्थित हो जाती है। इसी प्रकार उनके अंदर इच्छाओंका और चिन्ताओंका ताँता लगा रहता है, जिनकी पूर्तिमें उनका सारा जीवन व्यतीत हो जाता है और उनको कोई सुख प्राप्त नहीं होता।

सुखी किसे कहें और दरिद्र किसे कहें, इसके विषयमें शास्त्रकारोंका मत है—

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः
श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः।
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः
किं वामृतं स्यात् सुखदा निराशा॥
( शंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तरी ५ )

इस श्लोककी हर पङ्क्तिके आधे भागमें प्रश्न है

और आधे भागमें उसका उत्तर है। पहली पङ्क्तिमें जो प्रश्न है, वह है—'दरिद्र कौन है ?' और उसका उत्तर है—'जिसे बहुत तृष्णा हो।' दरिद्रताके निवारण-के लिये तृष्णाका त्याग आवश्यक है। तृष्णा क्या है ? इच्छाओंकी पूर्तिकी प्यास। जिनके मनमें अनेकानेक इच्छाएँ हैं, जिन्हें इच्छाओंकी पूर्तिकी प्यास लगी है, उनकी एक इच्छाकी किसी प्रकार पूर्ति हुई कि दूसरी इच्छा व्यक्त हो जाती है। इस प्रकार जिसके मनमें इच्छाओंका ताँता लगा है, एक इच्छा मिटी कि दूसरी तैयार है—जो तृषित व्यक्ति है, वह सम्पूर्ण वैभवोंसे सम्पन्न भी क्यों न हो, उसे वास्तवमें दरिद्र कहना चाहिये। वैभव-सम्पन्न होनेसे ही कोई सुखी नहीं गिना जा सकता, यदि उसने तृष्णाओंका त्याग नहीं किया है।

दूसरा प्रश्नोत्तर है—'श्रीमान् कौन है ? श्रीमान् अर्थात् लक्ष्मीसम्पन्न व्यक्ति वह है, जिसे सब प्रकार संतोष हो'। केवल धन होनेसे कोई श्रीमान् नहीं बन सकता; धन तो चिन्ताओं और भयका कारण है। परम धनी वही है, जिसे संतोष हो। संतोषका यह अभिप्राय नहीं कि हम हाथपर हाथ रखकर बैठे रहें और कोई काम-धंधा न करें। इसकी भी हमारे शास्त्रमें बड़ी निन्दा है। परमपिता परमात्माने जो सम्पदा हमें यहाँ दी है, उसके लिये उनकी बड़ी कृपा मानकर उसकी उत्तरोत्तर उन्नति करनी चाहिये। इसीको 'पुरुषार्थ' कहते हैं। इसके विषयमें प्रश्नोत्तर श्लोककी तीसरी पङ्क्तिमें है।

उद्यम करनेको 'पुरुषार्थ' कहते हैं। यह कर्मभूमि है; यहाँ हमें काम करना है और काम भी वही करना है, जिससे हमारी उन्नति हो।

जो व्यक्ति काम नहीं करता—निरुद्यमी है, वह जीवित रहते हुए भी मुर्दा है। जीवनमें काम करनेकी बड़ी महत्ता है। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त हमारे लिये जैसी-जैसी अवस्था आती है, उसके लिये अलग-अलग यथोचित कर्मोंका विधान है। हम पहले बालक, बादमें युवा और उसके बाद वृद्ध गिने जाते हैं। बाल्यावस्थामें ब्रह्मचर्यका, युवावस्थामें गृहस्थाश्रमका, वृद्धावस्थामें वान-प्रस्थ और संन्यासका हमारे यहाँ विधान है और उनके लिये अलग-अलग कर्त्तव्योंका भी विधान है। अवस्था-नुसार बताये हुए कर्मोंका यथावत् पालन करनेका ही नाम दूसरे शब्दोंमें 'पुरुषार्थ' है। जबतक शरीरमें प्राण है, तबतक कर्त्तव्य करते रहना चाहिये, किसी दूसरेके आश्रित या निर्भर नहीं रहना चाहिये। इस निराश्रित पुरुषार्थीके लिये शरीरको भी स्वस्थ रखना आवश्यक है, जिसके लिये बहुत-से नियम और उपनियम बनाये गये हैं। यहाँ उन समस्त नियमों और उप-नियमोंका विवेचन करनेकी आवश्यकता है। केवल इतना ही मानना और जानना आवश्यक है कि पुरुषार्थ-के लिये अपने शरीरको सदा स्वस्थ रखनेकी विशेष आवश्यकता है। उपनिषदोंमें इसके सम्बन्धमें प्रार्थनाके-मन्त्र हैं—

आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। (शान्तिपाठ)

'हे परमेश्वर ! मेरे सारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी इन्द्रियाँ, प्राणसमूह, शारीरिक-मानसिक बल और ओज पुष्टि और वृद्धिको प्राप्त हों।' अब इसके बाद जो चौथा और अन्तिम प्रश्न इस श्लोकमें है—'अमृत क्या है ?' जिसका उत्तर शास्त्रकार बताते हैं—'सुखदा निराशा' अर्थात् विषय-सुखकी आशाका भी त्याग। इसके त्यागसे क्या होगा ? भगवद्भजन।

भगवद्भजन अमृत है। इस अमृतका पान तो केवल संत-महात्मा ही करते हैं। भगवद्भजनमें जो अमृत-तुल्य आनन्द है, उसका रसास्वादन करना तो संत ही जानते हैं। यही कारण था कि पूर्वकालमें अनेकों राजा-महाराजा अपनी सारी सम्पत्ति, राज्यवैभव तथा सम्पूर्ण

कामनाओंका त्याग करके अन्तमें संतोंकी शरणमें आये थे और वहाँ रहकर ईश्वर-भजनरूप अमृतका पान करते थे एवं जीवन्मुक्त हो जाते थे। 'राजा-महाराजाओंको कौन-सी वस्तु अप्राप्त थी, जिसे भगवान्‌से प्राप्त करनेकी उन्हें अन्त समयमें इच्छा हुई और जिसने उन्हें ईश-भजनमें लगाया' ? इसका उत्तर यह है कि 'उन्हें हो सकता है सब प्रकारका सुख हो; किंतु वास्तविक सुख तो अमृत-पानमें है, जो केवल संत-महात्माओंको ही प्राप्त है और वह समस्त सुख-भोगकी आशा छोड़कर भगवान्‌के निष्काम भजनमें ही है।

निष्काम भक्तिका ही प्रतिपादन सम्पूर्ण गीतामें है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अपने श्रीमुखसे कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
( गीता १८। ६६ )

भगवान्‌की अनन्यशरणागतिमें ही अनन्त अमृत भरा है। 'सब प्रकारकी आशा-तृष्णाओंका त्याग करके भगवान्‌की शरणमें जाओ, भगवान् तुम्हें समस्त पापोंसे और उनसे उत्पन्न होनेवाले दुःखोंसे अवश्य मुक्त कर देंगे—इसमें तनिक भी संदेह न करो'—यह भगवद्-वाक्य है। माता दुर्गाकी वन्दना करते हुए जगद्गुरु शंकराचार्यने भी उनसे यही प्रार्थना की है, जो सदा अनुकरणीय है—

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥
( देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र )

'हे शशिवदनी दुर्गादेवी ! मुझे न तो मोक्षकी इच्छा है न संसारके वैभव, विज्ञान अथवा सुखकी आकाङ्क्षा है। मेरी तुमसे यही याचना है कि मेरा जीवन 'मृडानी,' 'रुद्राणी', 'शिव', 'शिव' और 'भवानी' आदि नामोंको ही जपते हुए बीते।'

कबीरदास भी कह गये हैं, जो यत्रतत्र आप उनके भजनोंमें सुनते होंगे—

जो सुख पायौ मैंने राम-भजन में,
सो 'सुख' नाहिं अमीरी में।

इसलिये यदि अमृत पानेकी इच्छा हो तो संतोंकी शरणमें जाओ और सब इच्छाओंका त्याग करके उनसे भगवद्भजन करना सीखो। यही सब धर्मोंका सार और पूर्ण ऐश्वर्य है।

चाह को जो फंका करे, उसका नाम फकीर।

इच्छाओंका दमन करना और उसपर विजय प्राप्त करना ही यथार्थ सुख है, जो संतोंसे प्राप्त होता है। संत बार-बार यही कहते हैं—

जाल लिये जम फिरत अहेरा। हरि विमुखन पर देत डहेरा॥
झंझा-झोर न कीजिय भाई। सिरपर काल रहा मँडराई॥

यमराज शिकारकी खोजमें घूम रहे हैं। जो भगवान्‌से विमुख हैं, वे ही उनके जालमें फँसते हैं। इसलिये अपने अंदर विराजमान उस आत्मतत्त्वको समझो, जो स्वयं परमात्माका स्वरूप है और जिसके विषयमें यह कहा जाता है कि 'न वह मरता है न जन्म लेता है; वह तो शाश्वत और नित्य रहनेवाला है'—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
( गीता २। २० )

यह तो गीताका उपदेश हुआ। इसके सिवा और भी उपदेशमय वाक्य हैं—

नाहं मनुष्यो न च देवयक्षो
न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रः।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो
भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः॥

'वास्तवमें न तो मैं मनुष्य, देव या यक्ष हूँ, न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हूँ। इसी प्रकार न मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी हूँ। मैं तो

यथार्थतः वही परमात्मतत्त्व हूँ, जो इस शरीरसे भिन्न, नित्य और निर्विकार है, जो सदा एकरस रहनेवाला, क्षय और वृद्धिसे रहित एवं पुरातन है।' विभिन्न शरीरों-को धारण किये हुए रहनेपर भी अंदर एक ही परमात्मतत्त्व बह रहा है, जिसकी न कोई जाति या वर्ण है। वह तो एक ही परमात्माका अंश है। यही यथार्थमें जानना और समझना है, जिसको हम भूले हुए हैं। मोहके वशीभूत होकर हम अपने उस वास्तविक स्वरूप-की पहचान नहीं रहे हैं, अपितु सुर-दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर भी कीट-पतंगकी भाँति इसे व्यर्थ नष्ट कर देते हैं; अतएव अपने-आपको भेदरहित, नित्य, चेतनस्वरूप समझकर तथा सांसारिक भोग-पदार्थोंकी कामनासे रहित होकर, संतोंकी शरणमें रहते हुए उस परम पिता परमात्माका निष्काम भजन और साक्षात्कार करो। यही वास्तवमें सुखी जीवन है। अन्यथा सर्वत्र दुःख, दीनता और दरिद्रता ही है।

# पागलकी झोली

( लेखक—महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज )

एक दिन कुटियामें बैठा हुआ पागल—'राम-राम, दे चाभी! लगा दे चाभी!' बोल रहा था। हलधर आकर कहने लगा—'अरे पागल बाबा! कहाँ चाभी लगा रहे हो?'

पागल—सब एक ही गड्ढेमें घुसे बैठे हैं। ताला लगा दो, ताला लगा दो। राम-राम! सीताराम!!

हलधर—कौन? कहाँ डेरा डाल रक्खा है?

पागल—सीताराम!

**हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं**
**हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्।**
**जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपं**
**सकलभुवनबीजं ब्रह्मचैतन्यमीडे॥**

'निर्विशेष, निरीह, हरि-हर-ब्रह्माका ज्ञातव्य, योगियोंके लिये ध्यानगम्य, जन्म-मरण भीतिनाशक, सच्चित्स्वरूप, समस्त विश्वका बीज ब्रह्मचैतन्य हृदयकमलमें आकर उपस्थित है।' गुरुदेव भी—

**हृदम्बुजे कर्णिकामध्यसंस्थं**
**सिंहासनं संस्थितदिव्यमूर्तिम्।**

हृदयपद्मकी कर्णिकाके मध्यभागमें सिंहासनपर आकर विराजमान हो रहे हैं। सीताराम, सीताराम!

हलधर—उसके बाद, उसके बाद?

पागल—सीताराम, उसी बाँके साँवरे ठाकुरने गीतामें कहा है—

**सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः।**

सबके हृदयमें विराजमान—स्वीकारोक्ति करते हैं कि मैं हूँ। सीताराम!

हलधर—वह क्या?

पागल—केवल निविष्ट ही नहीं—संनिविष्ट—उत्तमरूपसे प्रविष्ट हैं। वे जबतक हैं, जीवन भी तभीतक है; उनके हटते ही सारा खेल खतम हो जाता है। सीताराम!

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**

समस्त भूत-प्राणियोंके हृदयमें ईश्वर हैं—केवल हैं ही नहीं, मायाके द्वारा सबको कठपुतलीकी तरह नचाते भी हैं। सीताराम!

हलधर—राम-राम! सीताराम!! देखो, भूलकर मैं भी तुम्हारे साथ-साथ 'राम-राम, सीताराम' बोल पड़ा। उसके पश्चात्?

पागल—सीताराम! यह भूलना अच्छा है। हृदयस्थित प्राण ही सर्वोपरि है। प्राण जाकर अपानको गुह्यमें, समानको नाभिमें, व्यानको सर्वाङ्गमें, उदानको सुषुम्णामें स्थापित करके रखता है और स्वयं ग्रन्थि बनकर बैठा हुआ है। सीताराम, सीताराम। 'हृदि ह्येष आत्मा'—आत्माराम भी उसी प्राणपर आरूढ़ होकर सुखपूर्वक उसी स्थानपर निवास करते हैं—'देहेऽस्मिञ्जीवः प्राणारूढो भवेत्'—

( शाण्डिल्यश्रुतिः १।४।४ )

'हृदि स्थानेऽष्टदलपद्मं वर्तते, तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूपमणुमात्रं वर्तते, तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं भवति।' ( ध्यानबिन्दुश्रुतिः ९४ )

'हृदयमें अष्टदल पद्म है। उसके मध्यमें रेखावलय—गोल रेखाके समान ज्योतिरूप अणुमात्र जीवात्मा है। सब कुछ उसमें प्रतिष्ठित है।' राम-राम ! सीताराम !!

हलधर——लगता है, यह व्यापार बुरा नहीं है, सभी कुछ हृदयमें ?

पागल——सीताराम ! और भी सुनो—

हृदि स्थाने स्थितं पद्मं तस्य वक्त्रमधोमुखम् ॥
ऊर्ध्वनालमधोबिन्दुस्तस्य मध्ये स्थितं मनः ।
( योगतत्त्वोपनिषद् १३७-१३८ )

'हृदयमें एक अधोमुख पद्म है। उसका नाल है ऊपर, बिन्दु नीचे है। उस बिन्दुके मध्यमें है मनका पैतृक निवासस्थान।' राम-राम ! सीताराम !!

हलधर——तब तो निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म, गुरुदेव, कृष्ण, ठाकुर, ईश्वर, प्राण, आत्मा एवं मन—सब कुछ हृदयमें ही है।

पागल——क्या केवल इतना ही ! सीताराम ! वह अनाहत पद्म भी है। वहाँ वंशीध्वनि अपने-आप बजती रहती है। हमारा प्रणव भी उसी स्थानपर विराजमान है। 'हृत्पद्मकी कर्णिकापर स्थिर दीपकके समान, अङ्गुष्ठमात्र, निर्मल ॐकाररूप ईश्वरका ध्यान करे'—

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम् ।
अङ्गुष्ठमात्रममलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम् ॥
( ध्यानबिन्दु० १९ )

हलधर——प्रणवका उस स्थानपर ध्यान करना होता है ! वह तो उसका घर नहीं है।

पागल——राम राम! सीताराम!! रामके घरमें श्याम आता है क्या ! वही उसका अपना घर है। एक ही रस्सीमें ये सात पीढ़ियाँ जड़ी हुई हैं। सीताराम, सीताराम ! एक बेटी पगली निश्चय ही पड़ी-पड़ी सो रही थी। वह जल्दीसे आकर 'थेई-थेई' करके नाचना आरम्भ कर देती है। क्या केवल नाच ! गाना भी—कितने सुरमें, कितने डुगडुगी, ढोल, घड़ियाल और वंशी बजाकर गाना—ऐसा गान, जिसमें विराम या विश्रामका कहीं नाम नहीं। क्या केवल नाच-गान और वाद्य ही ! नहीं उसी स्थानपर प्रसव भी करती है, नाचती है और प्रसव करती है—सर्वथा प्रकाश-ही-प्रकाश। राम-राम ! सीताराम !!

हलधर——क्या प्रसव करती है ?

पागल——सीताराम, सीताराम।

शुभ्र-शुभ्र, सद्यःप्रसूत, रजःकणके समान—उसमें भी सूक्ष्म शुभ्र बिन्दु। राशि-राशि ज्योति। बड़े-बड़े आकाश प्रसव कर रही है और नाच रही है।

हलधर——वह कौन है ?

पागल——राम-राम ! सीताराम !!

योगिनां हृदयाम्भोजे नृत्यन्ती नित्यमञ्जसा ।

योगिजनोंके हृदयकमलपर नित्य-निरन्तर नृत्य करती हुई सर्वभक्षिणी सर्पिणी माँ। नाचकर, गाकर, बजाकर, प्रसवकर उसने बहुत बड़ा झमेला खड़ा कर रक्खा है, जिसको सँभालना कठिन हो रहा है। राम राम ! सीताराम !! अबकी बार ताला लगा दो, लगा दो। निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म, आत्मा, प्राण, मन, ॐकार और वह नाचती हुई माँ—सब एक घरमें ही घुसे हुए हैं। एकदम ताला लगा दो। वह बेटी पगली नाचकर, गाकर, बजाकर सबको एक कर दे। झगड़ा-झंझट एवं समस्त अस्त-व्यस्तताको मिट जाने दो। राम-राम ! सीताराम !!

## कुंजबिहारिनिकी जय !

जय जय कुंजबिहारिनि प्यारी।
जय जय कुंजमहल सुखदायक जय जय लालन कुंजबिहारी॥
जय जय वृंदावन रससागर जय जय जमुना सिंधु-सुखारी।
जय जय 'ललितमोहिनी' धनि-धनि सुखदायक सिरमौर हमारी॥

# सत्सङ्ग-वाटिकाके बिखरे सुमन

( नित्यलीलालीन श्रीभाईजीके पुराने सत्सङ्गसे चयन किये हुए )

१—मानव-जीवन भगवान्‌का बननेके लिये प्राप्त हुआ है। हम वास्तवमें भगवान्‌के हैं; पर हमने अपनेको काम-क्रोध आदिका गुलाम बना रक्खा है। यही मूर्खता है। जो भगवान्‌का बना, उसका जीवन सार्थक; जो जगत्‌का बना, उसका जीवन सार्थक नहीं, निरर्थक।

२—किसी भी साधनासे हो, किसी भी प्रकारसे हो, करना है एक ही काम—भगवान्‌के चरणोंमें अनुराग। भगवान्‌के चरणोंमें उत्तरोत्तर अनुराग बढ़ता रहे, इसीमें जीवनकी सार्थकता है। अतएव भगवान्‌के प्रति प्रेमकी लालसा जगानी चाहिये। इसके लिये प्रेमस्वरूप भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और जहाँतक बने, प्रेम प्राप्त करनेके लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिये।

३—सच्चे मनसे, श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भगवान्‌से माँगनेपर कोई भी संकट रह नहीं सकता। प्रार्थनाके समय मनमें यह भाव होना चाहिये कि 'भगवान् मेरा यह संकट दूर कर दें' और प्रार्थनामें आर्तभाव होना चाहिये तथा यह विश्वास होना चाहिये कि 'इस संकटको भगवान् दूर कर ही देंगे'। जो भगवान्‌से भगवान्‌का प्रेम ही चाहते हैं, वे तो सर्वोत्तम हैं; पर जो पापमें रत हैं, पापसे पैसा बटोरते हैं, वे यदि भगवान्‌से कुछ माँगें तो यह बुरा नहीं है। जगत्‌से, पापसे माँगनेकी अपेक्षा भगवान्‌से माँगना कहीं श्रेयस्कर है।

४—नाम-जपसे जो भी ऊँची-से-ऊँची स्थिति अन्य किसी साधनसे प्राप्त हो सकती है, वह प्राप्त हो जाती है—यह मेरा विश्वास है।

५—साधककी वृत्ति उत्तरोत्तर भगवान्‌के नाम-रूप-गुण-चिन्तनमें ही लगती जाय। आरम्भमें वृत्ति दूसरी ओर जाती है; पर उसमें यह सावधानी रखनी चाहिये कि वह या तो उधर जाय ही नहीं और यदि जाय तो भगवान्‌की सेवाकी भावनासे ही। भगवान्‌की सेवाकी भावनाके अतिरिक्त दूसरे किसी भी भावसे वृत्तिका जाना नीचे स्तरका है।

६—मन वृत्तियोंका समूह है। वृत्ति जब एक विषयमें जाकर उसके रूपकी हो जाती है, तब उसको 'ध्यान' कहते हैं।

७—शरीरका आराम, नामका नाम और जीभका स्वाद—साधकके लिये ये तीन बड़े विघ्न हैं।

८—भगवान्‌के प्रति कई भाव हो सकते हैं। सर्व-साधारणके लिये सीधा सरल भाव है—भगवान्‌के प्रति स्वामीका भाव। 'भगवान् मेरे स्वामी, मैं उनका दास'—यह सर्वथा एवं सर्वदा निर्दोष भाव है; इसमें कहीं भी पतनकी गुंजाइश नहीं है।

दूसरा भाव है—भगवान्‌को अपना सखा मानना। यह भाव दास्य-भावसे ऊँचा है। इस भावमें मानसिक रूपसे सदा-सर्वत्र भगवान्‌के साथ रहे और भगवान्‌की लीलाका चिन्तन करे। इसमें भगवान्‌के बालस्वरूपका या पार्थसखारूपका चिन्तन करे।

तीसरा भाव है—भगवान्‌को अपना बालक मानकर उनकी लीलाको देखे, अर्थात् भगवान्‌के प्रति वात्सल्य-भाव। भगवान्‌ने बालपनेमें जो-जो लीलाएँ की हैं, उन-उन लीलाओंका चिन्तन करे। बस, भगवान्‌की उन लीलाओंके प्रति मनमें अनुराग हो तथा उन्हें सर्वथा सत्य माने।

चौथा भाव है—मधुर भाव, अर्थात् भगवान्‌को अपने प्रियतमरूपमें अनुभव करे। 'गोपी-भाव' इसीका

नाम है। गोपी-भावके कई स्तर हैं, जिनमें मञ्जरी-भाव सर्वोत्तम है। श्रीराधा-माधव मञ्जरीके इष्ट हैं और श्रीराधा-माधवके सुखका आयोजन करना मञ्जरीका जीवन। मञ्जरीपर श्रीराधारानीकी सबसे बड़ी कृपा रहती है और इसीसे श्रीकृष्ण उसपर कृपा करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं।

इससे भी एक ऊँचा भाव है—श्रीराधामाधवने मुझे अपनेमें विलीन कर लिया है, उन्होंने अपने अङ्गोंमें मुझे प्रवेश करा लिया है। वहाँ पहले श्रीराधामाधवकी एकता अनुभव होती है, पीछे साधककी एकता हो जाती है।

९—सेवा वह उत्तम होती है, जिसमें सेवकका नामतक सेव्यको ज्ञात न हो सके।

१०—अभिमानका स्वभाव है—अपमान करना। अभिमानीसे अपमान किये विना नहीं रहा जाता—चाहे जिस क्षेत्रमें देख लिया जाय।

११—जिस प्रकारके वातावरणका हम सेवन करेंगे मनसे, शरीरसे, वाणीसे—वैसा ही बननेकी हमारी इच्छा होगी। सङ्गसे वृत्ति, वृत्तिसे क्रिया और क्रियासे स्वरूप बनता है।

१२—आज हम धर्मके नामसे लजाते हैं। भगवान्‌को माननेवाले भी समाजमें, सबके सामने अपनेको भगवान्‌को माननेवाला कहनेमें लज्जा अनुभव करते हैं।

१३—साधककी यह वृत्ति रहती है कि वह भोगियोंसे सर्वथा उल्टा चलता है। भोगी साधककी वृत्तिको समझते नहीं और वे उसे भ्रमित मानते हैं; पर साधक उनकी इस मान्यतासे उद्वेग नहीं करता, वह अन्तरमें प्रसन्न होता है।

१४—साधक और भोगीके दृष्टिकोणमें बड़ा अन्तर होता है। भोगी भोगोंमें ही जागता-सोता है और साधक भोगोंके त्यागमें ही जागता-सोता है।

१५—साधकका यह स्वरूप है कि वह भोगोंसे स्वाभाविक अपनी चित्तवृत्तिको हटाये।

१६—भोगी जिन चीजोंको चाहता है तथा ग्रहण करता है—सुखके लिये, साधक उन चीजोंके ग्रहणसे घबराता है। उसे उन चीजोंके ग्रहणमें दुःख अनुभव होता है। भोगीको मान अमृतके समान लगता है और साधकको मान विषके समान। भोगीको प्रशंसा बड़ी सुखकर प्रतीत होती है और साधकको प्रशंसा अग्निके सदृश।

१७—साधकका आदर्श त्यागी है, भोगी नहीं। इसीसे साधक भोगीद्वारा प्रलोभन दिये जानेपर भी भोगोंको स्वीकार नहीं करता।

१८—वृन्दावन-वासका बड़ा माहात्म्य है, पर वृन्दावनमें केवल रहना वृन्दावनवास नहीं है; वृन्दावन-वासका अर्थ है—जीवनका श्रीकृष्णमय हो जाना।

१९—पर्देपर चित्रित गहनोंको देखकर उसके प्रति आसक्ति, प्रलोभन नहीं जागता। यह संसार, यहाँके भोग-पदार्थ पर्देपरके गहने हैं—यह प्रतीति हो जाय तो स्वाभाविक ही इनके प्रति आसक्ति-उपेक्षा हो जायगी।

२०—भगवान्‌पर हमारा विश्वास दृढ़ हुआ कि नहीं, इसकी कसौटी है—भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें मङ्गल-बुद्धि हुई कि नहीं तथा दुःखमें भगवान्‌का संस्पर्श अनुभव होता है कि नहीं। जबतक भगवान्‌के किसी भी विधानसे मनपर विषाद-चिन्ता आती है, तबतक यह स्पष्ट है कि हमारा भगवान्‌पर विश्वास दृढ़ नहीं हुआ है।

२१—जितने भी भगवत्प्राप्त महापुरुष हुए हैं, उन सबकी स्थितियाँ पृथक्-पृथक् हैं; पर तत्त्वतः सभीने एक ही सत्यको प्राप्त किया है। साधनकालमें मार्गकी भिन्नता रहती है—जैसे किसीमें ज्ञान प्रधान होता

है, किसीमें भक्ति, किसीमें निष्काम कर्म तथा किसीमें योग-साधन। पर सबका प्राप्तव्य एक ही भगवान् है। अतएव महापुरुष सभी साधनोंका आदर करते हैं; पर जिस साधनद्वारा वे वहाँतक पहुँचे हैं, उसीका वे विशेषरूपमें समर्थन करते हैं, कारण उस साधनका उन्हें व्यावहारिक ज्ञान अधिक है।

२२—जगत्का कोई भी सौन्दर्य न स्थायी है और न वर्धनशील; वह अनित्य है, विनाशी है, क्षणभङ्गुर है, अपूर्ण है। भगवान्का सौन्दर्य नित्य है तथा पूर्णतम होते हुए भी नित्य वर्धनशील है।

२३—भगवान्के आश्रयके लिये आवश्यकता है—दैन्यकी। 'दैन्य'का अर्थ है—अभिमान-शून्यता। हममें नाना प्रकारके अभिमान भरे हैं—जैसे धनका अभिमान, पदका अभिमान, साधनका अभिमान, ज्ञानका अभिमान, त्यागका अभिमान, सेवा करनेका अभिमान आदि। जहाँ-जहाँ अभिमानका उदय होता है, वहाँ-वहाँ भगवान्की विस्मृति हो जाती है। पर भक्तोंका यह अभिमान कि 'मैं भगवान्का हूँ, भगवान् मेरे हैं, भगवान्की मुझपर अपार कृपा है'—वास्तवमें अभिमान नहीं है। यह एक परम सात्त्विक मान्यता है, जो साधनाका आधार है।

२४—भगवान्की सब शक्तियोंमें कृपाशक्ति प्रधान है। जहाँ उनकी कृपाशक्ति चरितार्थ होती है, वहाँ उनकी अन्य सब शक्तियाँ कृपाशक्तिके अनुगत होकर कार्य करती हैं। हमारा अभिमान भगवान्की कृपाका अनुभव नहीं होने देता। अतएव सबसे पहले अपने अहंकारका ही शमन करना है।

२५—संसारका सौन्दर्य सर्वथा मिथ्या है, पर सुखकी छिपी आशासे हम संसारके मिथ्या सौन्दर्यके प्रति लुब्ध हो रहे हैं। संसारके किसी भी प्राणी-पदार्थमें सौन्दर्य नहीं है—इस सत्यपर विश्वास करके हम अपनी भ्रान्तिसे जितनी जल्दी छुट्टी पा लें, उसीमें हमारा भला है।

२६—कोई अपनी किसी साधनासे भगवान्को खरीदना चाहे तो यह उसकी मूर्खताके सिवा और कुछ नहीं है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसके विनिमयमें भगवान् मिल सकें। भगवान् मिलते हैं अपनी सहज कृपासे ही। कृपापर विश्वास नहीं तथा कृपाको ग्रहण करनेका दैन्य नहीं है। ऐसी स्थितिमें कैसे काम बने? 'मैंने अभिमानका त्याग कर दिया, मुझमें अभिमान नहीं है'—इन उक्तियोंमें भी अभिमानकी सत्ता विद्यमान है।

२७—'दैन्य' भक्तकी शोभा है। यह उसका पहला लक्षण है। भक्त अपनेको सर्वथा अकिंचन—अभाव-ग्रस्त पाता है और भगवान्को यही चाहिये। बस, भगवान् ऐसे भक्तके सामने प्रकट हो जाते हैं।

२८—भगवान्का बल निरन्तर हमारे पास रहनेपर भी सक्रिय नहीं होता, इसका कारण है कि हम उसे स्वीकार नहीं करते। जब भी हम भगवान्के बलको अनुभव करने लगेंगे, तभी वह बल सक्रिय हो जायगा और हम निहाल हो जायँगे।

२९—हमारी भोगोंमें सुखकी आस्था इतनी दृढमूल हो रही है कि वैराग्यके शब्दोंसे वह दूर नहीं होती। किसी महान् विपत्तिका प्रहार तथा भगवान् अथवा उनके किसी प्रेमीजनकी कृपा ही इस आस्थाको दूर कर सकते हैं।

३०—शरणागत वही हो पाता है, जो दीन है। जिसे अपनी बुद्धि, सामर्थ्य, योग्यताका अभिमान है, वह किसीके शरण क्यों होना चाहेगा। जब अपना सारा बल, बलोंकी आशा-भरोसा टूट जाते हैं, तब वह भगवान्की ओर ताकता है और उनका आश्रय चाहता है।

३१—शरणागतमें दो चीजें अनिवार्यरूपसे आती हैं—निर्भयता एवं निश्चिन्तता। जबतक भय एवं चिन्ता बने हैं, तबतक न तो अपने दैन्यपर विश्वास हुआ है और न भगवान्‌की शरणागत-वत्सलतापर। बिना इन दोनों चीजोंपर विश्वास हुए काम बनना असम्भव है।

३२—भगवान्‌की कृपा दीनोंकी सम्पत्ति है। हम दीन हो जायँ तो भगवत्कृपापर हमारा स्वाभाविक अधिकार हो जाय।

३३—भजन-साधन करना चाहिये, पर इनका अभिमान मनमें न जगे, इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये। भजन-साधनके होनेमें भगवान्‌की कृपाको ही हेतु माने। भगवान्‌की कृपाका निरन्तर स्मरण रहे और अपने पुरुषार्थकी विस्मृति; बस, काम बन जाता है।

३४—जो जितना दीन है, उसमें भगवान्‌की कृपा-शक्तिका उतना ही अधिक प्रकाश है। 'दैन्य' भगवान्‌की कृपाके प्राकट्यके बीच लगे पर्देको फाड़ डालता है।

३५—जैसे ब्रह्माजीकी वाणी एक 'द' तीन अर्थ रखती है, वैसे ही गीता भगवान् श्रीकृष्णकी वाणी है। उसके अनेक अर्थ अधिकारी-भेदसे होते हैं। यही हेतु है कि विभिन्न आचार्यों, टीकाकारोंने गीताके अर्थ पृथक्-पृथक् किये हैं। अधिकारी-भेदसे उन सब अर्थोंका सामञ्जस्य है।

३६—भगवान्‌की कृपा अधिकारी-भेदकी अपेक्षा नहीं रखती। वह केवल देखती है कि यह एकमात्र कृपाका आकाङ्क्षी है कि नहीं।

३७—भगवान्‌की कृपा सबकी सम्पत्ति है, पर दीनोंकी सम्पत्ति विशेषरूपसे है; क्योंकि भगवान् 'दीनवत्सल' हैं।

३८—अबोध बालक, जो बोलना नहीं जानता, किसी प्रकारका संकेत करना नहीं जानता, वह रोकर ही मनोव्यथा व्यक्त करता है। इसी प्रकार जिसके पास रोनेके सिवा कोई साधन नहीं, वह भगवान्‌के सामने कातर होकर रोये। जगत्‌के सामने रोना अशुभ है, कायरता है; भगवान्‌के सामने रोना परम मङ्गलकारी है एवं परम बलका द्योतक है।

३९—भगवान्‌की कृपापर भरोसा करके दीनभावसे भगवान्‌के शरणापन्न हो जाना चाहिये। जब हम भगवान्‌के शरणापन्न हो जाते हैं और भगवान् पास आ जाते हैं, तब उनके दैवी गुण स्वतः हममें आविर्भूत होते हैं। फिर बन्धनोंको काटना नहीं पड़ता, बन्धन अकुलाकर स्वतः छिन्न हो जाते हैं; ग्रन्थि खोलनी नहीं पड़ती, वह स्वतः खुल जाती है।

४०—हम कैसे भी हों, भगवान्‌की कृपा ऐसी विलक्षण है कि वह हमें सब प्रकारके दोषों-पापोंसे मुक्त करके भगवान्‌के चरणोंका आश्रय प्रदान कर देती है। अन्यथा दीन-हीनोंका काम कैसे बनता।

४१—अग्नि सबको प्राप्त है। उसका किस प्रकार प्रयोग करना, यह प्रयोग करनेवालेपर निर्भर करता है। ऐसे ही कर्म करनेकी शक्ति भगवान्‌ने प्रदान कर रक्खी है; अब इस शक्तिका प्रयोग किस प्रकारके कर्मोंमें करना—यह हमपर निर्भर करता है। यदि हम अहंकारसे प्रेरित होकर, किसी विकारको लेकर कर्म करेंगे तो वह दोषयुक्त कर्म होगा तथा उसका बुरा फल हमें भोगना ही पड़ेगा; हम उससे बच नहीं सकते।

४२—पापकर्म करना मनुष्यका स्वभाव नहीं है। पापकर्म होते हैं हमारे अन्तःकरणमें संचित वासनाओंको लेकर। अतएव पहले उन वासनाओंका निराकरण करना चाहिये।

४३—संसारके अर्थ-भोग जिनके पास जितने अधिक हैं, वे उतने ही अधिक संतप्त हैं और वे दूसरोंको अधिक संतप्त करते हैं।

४४—माँगना बहुत बुरा, पर माँगना ही हो तो भगवान्‌से ही माँगे और भगवान्‌को ही माँगे।

४५—भगवान्‌की शरणागतिके दो रूप संतोंने बताये हैं—जैसे ( १ )—अपने पुरुषार्थसे, अपने प्रयत्नसे भगवान्‌के शरणापन्न होना तथा ( २ )—भगवान्‌की शरणागत-वत्सलतापर विश्वास करके भगवान्‌के अपनी शरणमें लेनेकी प्रतीक्षा करना । जगत्‌में इनके उदाहरण हैं—बंदरीका बच्चा एवं बिल्लीका बच्चा । बंदरीका बच्चा स्वयं अपनी ओरसे उछलकर माँकी छातीसे चिपक जाता है, पर बिल्लीका बच्चा अपनी ओरसे सक्रिय नहीं होता । बिल्ली स्वयं दाँतोंसे पकड़कर चाहे जब तथा चाहे जहाँ बच्चेको ले जाती है । रामकृष्ण परमहंसने दूसरे प्रकारके साधनको बहुत श्रेष्ठ बताया है । इस साधनमें पुरुषार्थ न करना नहीं है, पर अपने पुरुषार्थ-साधनपर निर्भरताका भाव नहीं रहता ।

४६—अन्याश्रयका सर्वथा त्याग 'निर्भरता' है और निर्भरता आती है विश्वाससे । यद्यपि विश्वास भगवान्‌की कृपासे ही होता है, फिर भी जीवसे भगवान् इतनी अपेक्षा अवश्य रखते हैं कि 'वह मुझे अपना मान ले' । 'भगवान् ही मेरे हैं'—जहाँ यह विश्वास हुआ कि निर्भरता स्वतः आ जाती है ।

४७—साधकके सामने दो चीजें आती हैं प्रधान-रूपसे—प्रलोभन और भय । कहीं उसकी पूजा होने लगती है, सम्मान होने लगता है, खानेको अच्छा मिलता है, उसके मतका आदर होता है—आदि-आदि प्रलोभन आते हैं और साधक उनमें रम जाता है और कहीं शरीरके आराम-त्यागका भय, भोगोंके विनाशका भय, लोक-निन्दाका भय, अपमानका भय आदि आते हैं और साधक विचलित होकर साधनका त्याग कर देता है । जो साधक उपर्युक्त प्रलोभनों एवं भयोंकी परवाह न करके अपनी साधनामें दत्तचित्त रहता है, वह लक्ष्यतक पहुँच जाता है ।

४८—'दैन्य' का अर्थ यह नहीं है कि साधक अपनेको इतना पतित मान ले कि उसके मनमें यह बात आ जाय कि वह भगवान्‌का कैसे हो सकता है । इसके विपरीत उसके मनमें यह भाव आना चाहिये कि मैं अपनी अयोग्यताके कारण और किसीका हो नहीं सकता, पर भगवान् तो पतितपावन हैं; अतएव वे मेरे हैं, मैं उनका हूँ ।

४९—खाली घरमें घुसनेका भगवान्‌का स्वभाव है । जबतक अपने अन्तःकरणमें हम कुछ छिपाकर रखते हैं, तबतक भगवान् आते हैं और झाँककर लौट जाते हैं । इसलिये अपने हृदयको सर्वथा खाली कर दें—दीन-हीन हो जायँ—किसी भी साधन-गुणका अभिमान अपनेमें न रखें ।

५०—भगवान्‌ने गीतामें घोषणा की है—'जीवनके अन्तकालमें जो मेरा स्मरण करते हुए शरीरको छोड़कर जाता है—ऐसा कोई भी हो, वह मुझको प्राप्त होता है—इसमें संदेह नहीं है ।' जगत्‌में भी हम देखते हैं कि छायाचित्र लेनेमें कैमरेका खिच दबानेके समय सामने-वालेकी जैसी आकृति होती है, वैसी ही फोटो आती है । भगवान्‌की इस घोषणाका हम दुरुपयोग करते हैं और कहते हैं कि 'जब अन्तकालमें भगवान्‌का स्मरण कर लेनेमात्रसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी तो अभी अन्य जरूरी-जरूरी काम कर लिये जायँ, अन्तकालमें भगवान्‌का स्मरण कर लेंगे' । इसपर भगवान्‌ने सावधान किया है कि 'जीवनभर जिस कार्यमें मन रहेगा, अन्त-कालमें उसीका स्मरण होगा—यह निश्चय है । अतएव सब समय मेरा स्मरण करते हुए जगत्‌का काम करो ।' जीवनभर मुझे भुलाये रहकर अन्तकालमें मेरे स्मरणकी आशा कदापि न करो; यह धोखा है । इससे सावधान हो जाओ ।

५१—कुछ करना नहीं है, केवल अपने मुखको भगवान्‌के सम्मुख मोड़ देना है । भगवान्‌के सम्मुख होने

ही, भगवान्‌के विरोधी अपने-आप विमुख हो जायँगे। भोग-विमुखता और भगवत्-सम्मुखता—दोनों साथ-साथ होती हैं। भोगका अर्थ है—भगवान्‌से रहित स्थिति।

५२—भगवान्‌को सर्वत्र देखकर, सब जीवोंमें उनकी अनुभूति करके जीवमात्रकी सेवामें संलग्न रहना—यह संतका सहज स्वभाव होता है। संत सदैव सचेष्ट रहता है कि उसकी प्रत्येक चेष्टा भगवान्‌की पूजा होती रहे।

५३—जो भगवान्‌से भोग चाहता है, वह भोगोंका गुलाम है; उसके आराध्य भगवान् नहीं, भोग हैं। भगवान् उसके साध्य नहीं होते, भगवान् उसके लिये भोग-प्राप्ति करानेके साधनमात्र होते हैं।

५४—भगवान्‌के लिये जीना, भगवान्‌के लिये मरना जिसके जीवनका स्वभाव है, वह प्रेमका निगूढ़ भाजन है। ऐसे जीवनके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

# समर्पणकी महिमा

( लेखक—ब्रह्मलीन संत श्रीगरीबदासजी )

अरे भाई! उसे पुकारनेमें क्या हर्ज है? वह सर्वव्यापक है, शुद्ध है, पवित्र है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वसमर्थ है और सर्वेश्वर है। चाहे जिस नामसे पुकारो उसे, वह सुनता ही है। अवश्य सुनता है। उसे शुद्ध ब्रह्म कहो या उसे अनन्त शक्तिमान् कहो, उसे कुछ भी कहो, मगर उसे अन्तरसे पुकारो।

अच्छा मैं तुम्हें एक मन्त्र बताता हूँ। तुम इसको जपा करो। तुम इसके दिव्य चमत्कारको देखोगे। वह मन्त्र है—'ॐ'। शुद्ध शक्ति इसमें है। तुम्हारे सारे मनोरथ इसकी शक्तिसे सिद्ध हो जायँगे। इस मन्त्रके प्रति मेरे हृदयमें एक विचित्र अकथनीय आकर्षण हो गया है। इसके लिये मेरे मनमें चाह उत्पन्न हो गयी और रात-दिन मैं इसका जाप करता रहा। यह मन्त्र मेरे दिलकी धड़कनके साथ मिल गया। मैं अपने हृदयकी धड़कनमें उसे स्पष्ट सुनता हूँ तथा उस मन्त्रकी ध्वनि ही मुझे सर्वत्र सुनायी देती है। यह दिव्य मन्त्र प्रदानकर वे महात्मा चले गये। इसके बाद मैं अनेक संत-महापुरुषोंके संसर्गमें आया और अनेक प्रकारकी साधनाएँ कीं, परंतु मेरे लिये तो उस परम शुद्ध शक्तिके चरणोंमें पूर्ण आत्म-समर्पणका ही एकमात्र आधार रह गया है। इससे मेरे जीवनमें एक विचित्र आनन्द-सा है, जिसका मैं निरन्तर पान किया करता हूँ। यह भक्ति-ज्वाला मेरे हृदयमें सदैव प्रज्वलित रहती है। शुद्ध और शक्तिका वही सम्बन्ध है, जो सूर्य और उसकी किरणोंमें है।

सम्पूर्ण निःशेष आत्मसमर्पणको ही मैं 'महासाधना' कहता हूँ। साधककी प्राणदायिनी माता श्रीगीताजीका यह सार-सर्वस्व है। लोग समझते हैं कि समर्पण करना अत्यन्त आसान है; परंतु वास्तविकता कुछ और है। समर्पणसे सारा कार्य, सारी साधना और समस्त मनोरथ सफल हो जाते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं। मुझे तो एकमात्र समर्पणसे ही पूर्ण शान्ति एवं आनन्दकी अनुभूति होती है।

हठयोग एवं राजयोगकी अपेक्षा भी समर्पणका मार्ग कठिन है। समर्पणमें कर्म, भक्ति और ज्ञानका पूर्ण समन्वय है। हाँ, यह बात अवश्य है कि हमारा यह समर्पण पूर्णतः प्रीति-पूर्वक होना चाहिये। नम्रता, आज्ञाकारिता, प्रभु-सेवा और भगवद्भावसे जगत्‌के जीवोंकी यथाशक्ति सेवा-सहायता करना—यह तो शरीरका समर्पण है। प्राणोंका स्तर इतना सुदृढ़ होना चाहिये कि वह साधनाके भारको सँभालकर रखे, अहंकारको भगा सके, इच्छा, वासना, मोह, आसक्ति, ईर्ष्या, राग-द्वेष, लोभ, मद और मत्सरसे साधकको विलग एवं अस्पृश्य रख सके। किसी भी व्यक्तिगत वासना, किसी भी अहंकारपूर्ण माँग या संकल्पद्वारा इस पूर्णतः समर्पणको कलङ्कित नहीं करना चाहिये।

चित्त सर्वथा शुद्ध और निर्मल हो जाना चाहिये। समर्पणका भाव दृढ़ होनेपर साधक यह अनुभव करने लगता है कि उसके फेफड़ोंमें भगवान् ही श्वास ले रहे हैं। उसकी वाणीमें भगवान् ही बोलते हैं, हृदयमें बैठे प्यार करते हैं, बुद्धिमें बैठकर विचार करते हैं और उसके आत्मामें रहकर आनन्दका आस्वादन करते हैं। यह है समर्पणकी पराकाष्ठा। इससे मनुष्य निश्चिन्त, निर्विघ्न और निर्लेप रहता है। उसके द्वारा भगवत्-शक्ति अपना कार्य करने लगती है। साधक

अपने हृदयमें ईश्वरके साथ नित्य संलग्न रहता है । साधक भगवान्‌को नहीं छोड़ता, भगवान् साधकको नहीं छोड़ते । भगवान्‌का साधकके हृदयमें निवास होता है एवं साधकका भगवान्‌के हृदयमें वास होता है । इस प्रकारके समर्पणकी महिमा हमारे ऋषि-मुनियोंने बतलायी है तथा यही है इस युगमें परम साधन । सिद्ध पुरुष यह जानता है कि भगवान् ही उसकी आत्मा है । वही यह डंकेकी चोट कर सकता है—

'मैं आत्मा हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकारके शब्दके कारण सिद्ध पुरुष ऐसे भ्रममें नहीं पड़ेगा, न अहंकारके ही वशीभूत होगा, जिससे वह सोचने लग जाय कि वह सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापक है और स्वयं भगवान् है या उसका प्रतिनिधि है । समाधिकी अवस्थामें साधकको बहुत ही सतर्क रहनेकी आवश्यकता है । नाममात्रका अहंकार भी उसे ले डूबेगा । मनुष्य ईश्वरका अंश अवश्य है, परंतु ईश्वर नहीं है । अंश पूर्णके बराबर नहीं हो सकता । सूर्यकी एक किरण सूर्यके समान नहीं हो सकती । जलकी एक बूँद लघु सागर है; इसमें संदेह नहीं; परंतु यह पूर्ण सागर नहीं है । इसलिये साधक सदैव इस बातका ध्यान रक्खे कि वह जीवित है; क्योंकि भगवान्‌का उसमें निवास है । वह श्वास लेता है; क्योंकि भगवान्‌का श्वासोच्छ्वास साधकके श्वासोच्छ्वासके साथ सुर मिला रहा है । वह सोचता है, विचारता है, इसलिये कि उसकी बुद्धिमें बैठे हुए भगवान् अपने तेजसे उस साधककी बुद्धिमें प्रकाश-किरणें बिखेरते हैं । वह भगवान्‌का साक्षात्कार करता है; क्योंकि ईश्वर साधकके साथ उसकी छायाकी तरह जुड़े हुए हैं । स्वयं यन्त्रमें क्या शक्ति है कि कुछ भी कर सके । उस अनन्त शक्तिके एक कणमात्रसे समस्त लोक-लोकान्तरोंमें जीवन-प्रवाह प्रवाहित हो रहा है । उसी शक्तिसे यह जगत्-चक्र चल रहा है । मनुष्य उस शक्तिके करोड़वें भागका भी करोड़वाँ हिस्सा है—या उससे भी कम है । इसलिये उसे यह भूल नहीं जाना चाहिये कि चाहे कितनी भी शक्ति उसमें क्यों न हो, वह उस अनन्त सर्वशक्तिमान् प्रभुकी समानता कदापि नहीं कर सकता । इसलिये मनुष्यमात्रके लिये एक ही मार्ग है और वह है आत्म-समर्पणका पथ ।

जिस प्रकार मालाके पुष्प एक ही तागेमें गुँथे रहते हैं, उसी प्रकार भगवन्नाम-जपसे लेकर समाधितक समस्त साधनाओंका मूल आधार है—समर्पण, सर्वस्व-समर्पण, निःशेष सर्वात्म समर्पण । प्रभु ! मेरे देवाधिदेव ! मैं यह नहीं भूलूँ कि तुम सदैव मेरे हृदयमें निवास करते हो, तुम्हीं मेरे जीवनके सूत्रधार हो । इस क्षण-क्षणमें बदलनेवाले, पल-पलमें बनने-बिगड़नेवाले संसारमें जो कुछ भी हो रहा है, जो कुछ भी सामने आ रहा है, जो कुछ भी गतिशील है और उसके बाद आँखोंसे ओझल होता है, वह तुम्हारी ही सत्तासे अनुप्राणित है । मेरे मन प्राण तुममें ही निवास करें और मेरा यह ज्ञान और यह चेतना बनी रहे कि तुम्हारी इच्छाके बगैर मेरी कोई गति नहीं, कोई आश्रय नहीं, कोई शरण नहीं, कोई अस्तित्व नहीं । यह शरीर तो मृत्पिण्ड है, यह सजीवन इसलिये है कि तुम इसमें श्वास लेते हो । तो मेरे प्रियतम प्राणाराम ! मैं अपने हृदयमें निरन्तर तुम्हारे आलिङ्गन-रसका पान करता रहूँ । जो कुछ करूँ, वह तुम्हारी प्रेरणा और संकेतसे करूँ; तुम्हीं मेरे द्वारा अपना कार्य करो, अथवा उद्देश्य सिद्ध करो । मेरे हृदयमें तुम्हीं विराजमान रहो, मेरी बुद्धिमें तुम्हीं प्रकाशरूप बने रहो, मेरे मस्तिष्कमें तुम्हीं विचारक बने रहो । मेरे समस्त अहंकारको अपनेमें समा लो । प्रभु ! तुम मेरे भौतिक शरीररूपी बाँसुरीमें तान बने रहो । हे सर्वशक्तिमान् ! सर्वसमर्थ स्वामिन् !! भले ही मैं समाधिकी अवस्थामें तुमसे एकाकार होकर तुम्हारी तरह हो जाऊँ; परंतु भूलकर भी मैं यह न मान बैठूँ कि मैं भी तुम्हारे समकक्ष हूँ, सदृश हूँ । मैं हूँ क्या ? एक क्षणभङ्गुर वस्तु, एक नगण्य नाचीज, जो एक कच्चे सूतके धागेकी तरह हर तेज हवाके झोंकेपर कम्पित हो जाती है, हाँ वही, जो एक श्वासके बाद दूसरेके लिये हाथ उठाती है । तुम्हारे विशाल सागरके समक्ष इस बिन्दुकी क्या शक्ति है ! हे प्रभु ! तुम मेरी सम्पूर्ण अहंभावना स्वीकार करो ।

मेरे दयामय हरि ! मुझे नम्रता तथा दीनता प्रदान करो । ओ मेरे स्वामिन् ! तुम्हारी इच्छा मेरे जीवनमें पूर्ण हो । तुम्हारी जो भी इच्छा है, वह मेरे चारों ओर व्याप्त है । तुम्हीं मेरे भीतर साधना करो और तुम्हीं मेरे भीतर सिद्ध होकर अपनी इच्छा पूर्ण करो । हे दीनानाथ ! निराधारोंके सर्वाधार प्रभु ! अपने इस याचकको, दासको, भक्तको भी निभा लेना तथा सदा अपने चरण-कमलोंमें स्थान देते रहना । आपके समान दानी, दयालु एवं धैर्यवान् कोई नहीं है, कोई नहीं है ।

# स्वामी श्रीविवेकानन्द

( लेखक—ब्रह्मचारी श्रीनिर्गुणचैतन्य )

घोर कलिकालसे पीड़ित, हाहाकार करते हुए मानवको शान्ति और आनन्द देनेके लिये ही श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवने इस धरा-धाममें पधारकर अध्यात्म-मन्दाकिनी प्रवाहित की थी। किंतु अब प्रश्न यह था कि इस तीव्र वेगवाली मन्दाकिनीको धारण करनेकी शक्ति किसमें है? उसके वेगको सहन करनेकी शक्ति किसमें है? जिस विश्ववन्द्य महापुरुषने ज्ञान और वैराग्यके सर्वोन्नत शिखरपर खड़े होकर इस महान् अध्यात्म-वेगको भगवान् शंकरकी भाँति ही अपने मस्तिष्कमें धारणकर मानव-कल्याणके हेतु आध्यात्मिक भागीरथीका स्रोत प्रवाहित किया था, जिस वेदान्त-केसरीने महावीर हनुमान्की तरह समुद्र-पार जाकर वेदान्त गर्जनासे मृतप्राय मानव-जातिमें पुनः प्राणोंका संचार किया तथा जिसने श्रीरामकृष्णदेवके संदेशको—सनातनधर्मके सत्योंको समस्त मानव-जातितक पहुँचाकर समन्वय, एकत्व और भ्रातृत्वका पाठ पढ़ाया तथा मानवकी अन्तर्निहित दिव्यताका ज्ञान कराकर जीवमें शिवकी सेवाद्वारा मोक्षका मार्ग बताया, वही महापुरुष आज "स्वामी विवेकानन्द"के नामसे आध्यात्मिक जगत्में सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा है।

इधर जिन दिनों श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव कठोर साधनाओंद्वारा सांस्कृतिक गगन-मण्डलको पुनः आध्यात्मिक स्पन्दनसे भर रहे थे, उन्हीं दिनों इस महापुरुषने कलकत्ताके सिमला मोहल्लेमें माता भुवनेश्वरी देवीकी गोदको अलंकृतकर पिता विश्वनाथदत्तके आँगनकी शोभा बढ़ायी। इतना ही नहीं, एक बार पुनः भारतका आँगन उसी प्रकार जगमगा उठा, जैसे बारह सौ वर्ष पूर्व अन्य एक ज्ञानपुञ्ज आचार्य शंकरको पाकर दमक उठा था।

इस महापुरुषका जन्म १२ जनवरी, सन् १८६३ ई० को हुआ था। माता-पिता एक सुसंस्कृत बंगाली कायस्थ परिवारके थे। बालकका नाम 'नरेन्द्रनाथ' रक्खा गया। विश्वनाथदत्त नयी रोशनीके प्रगतिशील व्यक्ति थे। माँ भी उदारहृदया तथा सरल व्यवहारकी महिला थीं। पिताकी प्रखर बुद्धि तथा माताके प्रबल क्षात्र संस्कारोंद्वारा ही 'नरेन्द्र' का चरित्र गढ़ा हुआ था और इनसे भी अधिक प्रभाव सम्भव है उसपर अपने संन्यासी पितामहका पड़ा था, जो पचीस वर्षकी आयुमें युवती पत्नी तथा गृहका त्याग कर चुके थे। शायद यही एक चिनगारी नरेन्द्रके जीवनमें त्यागका बड़ा भारी शोला बनकर भड़क उठी थी।

नरेन्द्र एक असाधारण प्रवीणताका पुञ्ज था। जैसा जन्मजात ऊँचा सुडौल क्षात्र-शरीर, वैसी ही तेजस्वी आकृति तथा महामेधावी मस्तिष्क एवं वैसी ही सभी विद्याओं और कलाओंमें निपुणता। कुश्ती, व्यायाम, घुड़सवारी, तैरने, नाव खेने, गाने-बजाने, नाचने, अभिनय करनेकी कलाओंसे लेकर साहित्य, काव्य, गणित, विज्ञान, इतिहास, दर्शन आदि सभीमें धुरंधर विद्वान् था। वाद-विवाद तथा तर्क-वितर्कमें भी किसीसे कम न था। उसी प्रकार उसके हृदयमें धार्मिक जिज्ञासा, अन्तरात्माकी अभिव्यक्तिके लिये एक अनिर्वचनीय प्रयत्न और चेष्टा तथा जीवन-मुक्तिविषयक एक व्याकुल तड़पन थी। यह सब होते हुए भी छुटपनमें वह बड़ा ही नटखट था। अदम्य शक्तिके कारण वह चपल बालक होते हुए भी बहुत बार गम्भीर ध्यानमग्न पाया गया। एक बार तो उसका इतना गहरा ध्यान जम गया कि साँप आनेपर जब और साथी चीत्कार करते हुए भाग गये, नरेन्द्र बाह्यज्ञान-शून्य वहीं बैठा रहा। दरिद्र

और दुखीको देख अपने कपड़ेतक दे डालता। पढ़ाई-लिखाईमें तो क्या कहना, जो भी एक बार कानसे सुन लेता उसे कभी न भूलता था। वह बाल्यकालसे ही किसी भी वस्तुमें जल्दी विश्वास नहीं करता, अपितु उसे युक्तिसे ही समझता था।

इतने गुणोंका समावेश होते हुए भी नरेन्द्रका मन अपनी शङ्काका समाधान न पा रहा था। उसकी आध्यात्मिक भूख प्रबल हो उठी थी। अब वह कालिज-में पढ़ता था, परंतु विश्वविद्यालयोंकी पोथियाँ उसकी समस्या हल न कर सकीं। विचार-स्वातन्त्र्य और वैज्ञानिक युक्ति उसे पसंद थीं। कोरी श्रद्धा और विश्वासके आधारपर ही वह किसी मतको स्वीकार न करता था। उसने सोचा यदि ईश्वर है तो उसके दर्शन होने चाहिये और यदि आत्मा है तो उसकी अनुभूति होनी ही चाहिये। बस, उसने विविध धर्मोंका अध्ययन आरम्भ कर दिया। प्राच्य एवं पाश्चात्य तत्त्व-सम्बन्धी पोथियाँ उलट-पलट कर देख डालीं, हर्बर्ट स्पेन्सर-जैसे दार्शनिकोंसे पत्र-व्यवहार किया तथा केशवचन्द्रसेन तथा देवेन्द्रनाथ ठाकुर-जैसे बंगालके तत्कालीन ब्रह्मसमाजी नेताओंके द्वार खटखटाये और प्रश्न किया, "क्या आपने ईश्वरको देखा है?" परंतु उत्तरमें निराशा-के अतिरिक्त कुछ भी हाथ न लगा। संशयकी दलदलमें फँसे नरेन्द्रके उद्धारके लिये ही दैवयोगसे अनायास ही इस तूफानी तरुण जिज्ञासुकी भेंट श्रीरामकृष्ण परम-हंसदेवसे हुई। नरेन्द्रका जीवन-पथ अकस्मात् ही प्रकाशित हो उठा—अवरुद्ध द्वार खुल पड़ा।

पहली ही भेंटमें श्रीरामकृष्णने भी इस सुयोग्य पात्रको पहचान लिया। इसीलिये उसे अपना बनानेके लिये वे व्याकुल हो उठे। नरेन्द्रको दक्षिणेश्वर आनेके लिये निमन्त्रण दे गये। इस पहले मिलनमें नरेन्द्र इस पागल अशिक्षित ब्राह्मण पुजारीके प्रति तनिक भी आकर्षित न हुआ। परंतु लाख अनिच्छा होनेपर भी इसी पगले ब्राह्मणके प्रति एक गुप्त आकर्षणसे बँधा वह आखिर दक्षिणेश्वर पहुँच ही गया। उसे देहकी सुध भी न थी। खोया-खोया-सा वह श्रीरामकृष्णसे पूछ बैठा, "क्या आपने ईश्वरको देखा है?" तुरंत उत्तर मिला, "हाँ, क्यों नहीं! मैंने उसे वैसे ही देखा है, जैसे तुमको अपने सामने देख रहा हूँ—इससे भी स्पष्ट; इतना ही नहीं, यदि तुम चाहो तो तुम्हें भी दिखा सकता हूँ।" नरेन्द्रके पास कहनेको और कुछ न रहा। वह आँखें फाड़कर देखता ही रह गया। यही तो समाधान था उसकी जिज्ञासाका। उसका मस्तक आदरसे झुक गया। वह खामोश तो हो गया, परंतु वह इस पगले ब्राह्मणके आगे सम्पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण न कर पाया।

समयके साथ-साथ इस संतकी ज्ञान-प्रभा, आध्यात्मिक तेज और दिव्य कृपासे नरेन्द्रके अन्तस्तलके पर्दे खुलने लगे, गुत्थियाँ सुलझने लगीं तथा तर्क, वाद-विवादका स्थान श्रद्धा और विश्वासने ले लिया। लगा-तार छः वर्षतक इस अपूर्व गुरुके चरणोंमें बैठनेसे नरेन्द्रकी तूफानी जिज्ञासा सदाके लिये शान्त हो गयी। उसकी अवस्था इस प्रकारकी हो गयी, जैसी गीतामें भगवान्‌ने बतायी है—

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं**
**समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।**
(२। ७०)

अर्थात् 'जैसे सब ओरसे परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें बहुत-सी नदियोंके जल (उसको चलायमान न करते हुए ही) समा जाते हैं।' जो नरेन्द्र ईश्वरकी सर्वव्यापकता आदिकी खिल्ली उड़ाते हुए कहता था, "देखो जी, यह घड़ा भी ईश्वर है और ये मक्खियाँ भी" इत्यादि, वही नरेन्द्र वेदान्तकी अनुभूति कर ब्रह्मदर्शन-लाभ कर बैठा और बादमें स्वामी विवेकानन्दके नामसे विश्वविख्यात वेदान्तका उपदेशक बना। किंतु इस

अवस्थातक पहुँचनेसे पहलेका इतिहास लंबा है। सन् १८८४ ई० में नरेन्द्रके पिताकी असामयिक मृत्यु हो जानेसे सारे परिवारका भार उसीपर आ पड़ा। परंतु कलकत्ते-जैसी विशाल नगरी इस महामेधावी शिक्षित नरेन्द्रको नौकरी देनेमें असमर्थ ही रही। कई दिन बिना अन्नके बीत जाते। दिनभर दौड़-धूपसे झुलसा हुआ बेचारा दर-दर फिरा, परंतु अपनी माँ, बहिन और भाइयोंके लिये एक पैसा भी न कमा सका। उधर सम्बन्धियोंने समयका लाभ उठा उसकी पैतृक सम्पत्ति हड़पनी चाही। अन्याय, असमानता, निराशा और दुःख-दैन्यके बादलोंसे घिरा हुआ नरेन्द्र एक ओर पारिवारिक समस्याओंके जंजालमें फँसा हुआ था और दूसरी ओर अन्तर्निहित आत्मोपलब्धिकी तीव्र कामना उसे जला रही थी।

एक दिन अपनी माताके आदेशानुसार नरेन्द्र श्रीरामकृष्णदेवके पास गये तथा उनसे उन्होंने कहा कि वे नरेन्द्रके परिवारके लिये माँ कालीसे धन माँगें। श्रीरामकृष्णदेवने कहा—'अरे, तू स्वयं ही माँग ले। आज मङ्गलवार है, माँ अवश्य ही सुनेंगी।' नरेन्द्र माँगने गया धन-दौलत, पर माँग बैठा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और विवेक। श्रीरामकृष्णने उसे दुबारा भेजा, फिर भी उसने माँगे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और विवेक। और ऐसा ही तीसरी बार भी हुआ। श्रीरामकृष्णदेव अति प्रसन्न हुए और वर देते हुए बोले—'अच्छा, मोटा कपड़ा और मोटा भात तो तेरे घरमें मिल ही जायगा।' भगवान्के प्रेमका दीवाना, भला, तुच्छ धनकी याचना करता? जिस अवस्थामें आदमी दुःखसे पागल हो जाता है, उस हालतमें भी वे धन न माँग सके। यही थी उनकी महानता, वैराग्यपूर्णता तथा उनके भावी महान् कार्यकी सूचना। जो हो, श्रीरामकृष्णदेवके आशीर्वादसे उन्हें मोटा कपड़ा तथा मोटा भात मिलता ही रहा।

इस प्रकार दुःख और संकटमय जीवन व्यतीत करते हुए नरेन्द्रकी आध्यात्मिक पुकार और भी तीव्र हो उठी। अपनेको सम्पूर्णरूपसे श्रीरामकृष्णदेवको समर्पणकर वह कठोर साधनामें लग गया। गुरुकृपासे वह शीघ्र ही निर्विकल्प समाधिकी उस उच्च भूमिकातक पहुँच गया, जहाँ कोई बिरले भाग्यशाली ही पहुँचते हैं। उस अवस्थाके फलस्वरूप जो शान्ति उसे मिली, उसका वर्णन हम ऊपर कर ही चुके हैं।

उनका व्यक्तिगत आध्यात्मिक लक्ष्य तो पूर्ण हुआ। अब वे चाहते थे इसी अवस्थामें डूबे रहना, किंतु श्रीरामकृष्ण अपने इस असाधारण शिष्यपर कुछ और ही आशा लगाये हुए थे। वे कहा करते थे, 'साधारण लोग जगत्को मार्ग दिखानेका भार लेते हुए भय खाते हैं। उदाहरणार्थ एक मामूली-सा तिनका जैसे-तैसे स्वयं तो तैर सकता है; किंतु एक छोटी-सी चिड़िया भी यदि उसपर बैठ जाय तो वह तुरंत ही डूब जाता है। परंतु नरेन्द्रकी बात और है; वह गङ्गाके वक्षःस्थलपर बाढ़के समय तैरते हुए उन विशाल वृक्षोंके तनों-जैसा है, जो अपने ऊपर न जाने कितने असहाय प्राणियोंको लिये रहते हैं।' इसीलिये कर्मक्षेत्रसे दूर रहनेकी नरेन्द्रकी प्रवृत्ति देख श्रीरामकृष्णने उससे कहा—

'छिः छिः, नरेन्द्र! मैं तो सोचता था कि तुम उस महान् वट-वृक्षके समान होगे, जिसकी छाँहमें हजारों थके-माँदे प्राणी आ-आकर शरण लेंगे। किंतु इसके विपरीत तुम एक स्वार्थीकी तरह केवल अपनी ही निजी हित-साधनामें लगे रहना चाहते हो।'

—ये शब्द नरेन्द्रके अन्तरमें घर कर गये उसने संकल्प किया कि 'भौतिकवादकी चकाचौंधसे चौंधियायी आँखोंवाले अस्तव्यस्त मानवको आत्मज्ञानकी शिक्षा दे शान्ति प्रदान करूँगा तथा असंख्य दरिद्र, दीन और रोगी नारायणोंको अपनी यथोचित सेवाओंसे तृप्त करूँगा।'

सन् १८८६ ( १५ अगस्त ) की अर्धरात्रिके बाद श्रीरामकृष्णने अपनी इहलीला समाप्त की। जानेसे पहले वे नरेन्द्रको अपनी आध्यात्मिक सम्पदा सौंपना न भूले थे। इतना ही नहीं, वे अपने सभी शिष्योंको भी नरेन्द्रके हाथों सँभला गये थे। इसीलिये कुछ समय बाद ही आँटपुर नामक स्थानपर नरेन्द्रने अपने बहुत-से गुरुभाइयोंसहित संन्यास-व्रतकी प्रतिज्ञा कर सदाके लिये अपना जीवन प्रभुके अर्पण कर दिया। वराहनगरमें एक मठकी स्थापना की गयी, जहाँ ये त्यागी-वैरागी युवक संन्यासी अहर्निश साधन-भजनमें जीवन व्यतीत करने लगे।

सन् १८८८ ई० में नरेन्द्र, जो अब एक संन्यासी थे, भारत-भ्रमणको निकल पड़े। इस यात्राके अन्तर्गत उन्होंने हिमालयसे कन्याकुमारीतक क्रमशः समस्त भारतको नाप डाला और १८९२के अन्ततक भारतके दक्षिण छोर कन्याकुमारी अन्तरीपपर जा पहुँचे। इन लगभग चार वर्षोंमें कहीं तो उन्हें मिले भारतके गौरवमय अतीतकी स्मृतियोंसे रँगे खँडहर, कहीं राजप्रासादोंका विलासितापूर्ण वैभव और कहीं भग्न-जर्जर झोंपड़ियोंके बीच दरिद्रता, दासता, दीनता और रोग-शोकसे तड़पती, सिसकती एवं कराहती भारत माताकी संतान। वर्तमान भारतकी विपदाक्रान्तावस्थाका नक्शा उनकी आँखोंके सामने चित्रित हो गया। स्वामीजीका हृदय रो उठा। आँखोंसे झरझर अश्रुधारा बह चली। तभी उनके हृदयमें श्रीगुरुमहाराजकी वाणी पुनः गूँज उठी कि उन्हें व्यक्तिगत स्वहितसाधनाके संकीर्ण घरौंदेसे बाहर निकलकर बहुजनहिताय बहुजनसुखाय अपने जीवनको उत्सर्ग कर देना होगा। अपना मोक्ष, मुक्ति—सभीको छोड़ सामूहिक मुक्तिका उपाय निकालना होगा। और तभी उनके होठोंसे महामन्त्र गूँज उठे, 'मूर्खदेवो भव, दरिद्रदेवो भव, रोगिदेवो भव।' उसी चट्टानपर बैठे-बैठे स्वामीजीने एक योजना बनायी, जिससे आत्माका भी कल्याण हो और जगका हित भी। अब उनका कार्य होगा, 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।'

३१ मई, सन् १८९३ ई०के दिन स्वामीजीने शिकागो विश्वधर्मसम्मेलनमें भाग लेनेके लिये अमेरिकाको प्रस्थान किया। स्वामीजीने न तो किसी मान्यताप्राप्त संस्थाकी ओरसे विधिवत् प्रतिनिधित्व प्राप्त किया था और न उन्होंने धर्म-परिषद्में प्रविष्ट होनेकी अनुमति-तक ही ली थी। एकदम अपरिचित होनेके कारण उन्हें अनेक विषम कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। जो अल्प पूँजी वे ले गये थे, वह भला, कबतक चलती। कितने ही दिन भूख-प्याससे व्याकुल, शीत प्रदेशमें बिना गर्म वस्त्रोंके दर-दर भटकना पड़ा। सहायताके लिये जिस भी दरवाजेको खटखटाया, वहींसे निकली अपमान-जनक कटुवाक्योंकी बौछार। परंतु उनका अपने गुरुदेवपर अटूट विश्वास था। वे साहस नहीं हारे और अन्तमें श्रीरामकृष्णदेवका मङ्गलमय आशीर्वाद, स्वयंका ओजस्वी व्यक्तित्व, अगाध पाण्डित्य तथा आत्मशक्तिका दिव्य प्रभाव पड़े बिना न रह सका। जिनके नेत्र थे, उन्होंने पहचाना कि यह एक अमूल्य मणि है। अयाचित ही बोस्टनकी एक महिला तथा हारवर्डके सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयके एक विद्वान् प्राध्यापकने आगे बढ़कर उन्हें प्रत्येक सुविधा प्रदान की तथा उनके धर्मसम्मेलनमें भाग लेनेकी व्यवस्था कर दी।

११ सितम्बर, सन् १८९३ ई०के दिन प्रथम विश्वधर्ममहासम्मेलनका अधिवेशन आरम्भ हुआ। पहले ही दिनकी अपनी छोटी-सी वक्तृताद्वारा उन्होंने सारे अमेरिकामें तहलका मचा दिया। वेदान्तकेसरीकी गर्जनासे विश्वाकाश गूँज उठा। पाश्चात्यसभ्यताका लौह-दुर्ग बालूके ढेरके समान उड़ गया तथा विश्वविजयी हो इस तरुण संन्यासीने इस नयी दुनियामें वेदान्तका झंडा फहरा दिया।

सन् १८९३ से १८९६ई०तक ढाई वर्ष आप अमेरिकामें रहे तथा अपने अपूर्व ओजस्वी व्याख्यानों, प्रवचनों तथा उपदेशोंद्वारा इन्होंने समस्त पाश्चात्त्य जगत्को वेदान्तकी शिक्षा दी। विलियम जेम्स-जैसे अमरीकी दार्शनिक, रूसी महापुरुष टाल्स्टाय, जर्मन वेदान्ती पॉल डायसन तथा विश्वविश्रुत वेदज्ञ महात्मा मैक्समूलर उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके।

१५ जनवरी, सन् १८९७ई० में स्वामीजी पुनः भारत लौटे। श्री जे० जे० गुड्विन, श्रीमान् और श्रीमती सेवियर उनके साथ थे। समस्त भारतने अपने आध्यात्मिक नेताकी विश्व-विजयका अभिनन्दन करते हुए बड़ी धूमधामसे उसका स्वागत किया। गर्व और सम्मानसे भारतवासी फूल उठे। जहाँ जाते, भीड़ उमड़ पड़ती। रामेश्वरम्से मद्रासतक उनके स्वागतमें रास्तेमें स्थान-स्थानपर तोरणद्वार सजाये गये और वंदनवारें बाँधी गयीं। उनका दर्शन पानेके लिये खबर मिलते ही रेलकी पटरीपर लोग लेट जाते ताकि गाड़ी अवश्य ठहरे। राजा लोगोंने स्वयं वे रथ हाँके, जिसमें स्वामीजीका जुलूस निकाला गया था। मानपत्रोंकी तो भरमार ही थी। कोलम्बोसे अलमोड़ातक स्वामीजीने स्थान-स्थानपर स्वागतके उत्तर दिये तथा अत्यन्त तेजःपूर्ण, मर्मस्पर्शी तथा शक्तिदायी भाषण दिये, जिन्होंने भारतवासियोंमें पुनः बल और उत्साहका संचार किया। भारतवासी एक दीर्घ निद्रासे उठ पड़े। 'उठो! जागो!' की ध्वनि गूँज उठी। त्याग और सेवाके नूतन पथपर आह्वान किया उन्होंने समस्त मानव-जातिको। सभी आत्माएँ अव्यक्त ब्रह्म ही हैं, इसी सनातन सत्यको जानकर मुक्त होनेके लिये प्रत्येक जीवमें शिवकी पूजा करनेका आदेश किया। इसीको साकाररूप देनेके हेतु उन्होंने १ मई, सन्१८९७ को रामकृष्ण-मिशनकी स्थापना की तथा देश और सेवाका एक स्पष्ट और परम उपयोगी कार्यक्रम इस संस्थाके सामने रक्खा।

सन्१८९९ ई०में स्वामीजी पुनः एक बार अमेरिका गये और लगभग एक वर्ष वहाँ रहकर यूरोप होते हुए भारत लौटे तथा पुनः अपने कार्यमें लग गये।

४ जुलाई, सन् १९०२ ई०को अल्पायुमें ही स्वामीजीने महासमाधि ले ली। इन ३९ वर्षोंमें स्वामीजीने मानवको हजारों वर्षोंके लिये यथेष्ट आध्यात्मिक भोजन दे दिया। युग-युगतक उनकी वाणी मानवको मोक्ष-मार्गपर आगे बढ़ाती रहेगी।

## मिलन-वेला

किसी गृह-कार्यमें सहयोग देनेके लिये कुछ महिलाओंको बुलाया था। कार्यके लिये शीघ्रता थी और उन लोगोंके आनेमें विलम्ब होता जा रहा था और साथ ही हृदयमें व्यग्रता बढ़ती जाती थी। कई बार अट्टालिकापर चढ़कर देखा, कई बार झरोखोंसे, एकाएक कुछ विचार आते ही हँसी आ गयी।

इस घरमें पता नहीं मेरा कितने दिन-घंटे या मिनटका ही सम्बन्ध हो। जिस कार्यके लिये मैं इतनी व्यग्र हूँ, उसका उपभोग भी कर सकूँगी या नहीं, यह कौन जानता है? ओफ! सब क्षणिक—मिथ्या, जिसके लिये इतनी व्यग्रता—हार्दिक व्यग्रता! जो सत्य है, सदा अपना है, उसे पानेके लिये यदि इतनी व्यग्रता होती तो अभीतक क्या, कभीका सोनामें सुहागा मिल गया होता। प्रतीक्षाके जिस क्षणमें मिलनकी उत्कण्ठा अपनी सीमापर पहुँच जायगी—हृदय व्याकुलतासे छटपटा उठेगा, बस, वही क्षण मिलन-वेलामें पलट जायगा। इस मायामय संसारमें हमने तो जितना मन उलझा रक्खा है, उसका आधा भी क्या कभी प्रभु-चरणोंमें जा सका? शायद नहीं। तब मिलन-वेला भी अति दूर है। जब प्रतीक्षा करते-करते इतनी तन्मय हो जाऊँ कि समय, स्थान—यहाँतक कि अपने-आपको भी भूल जाऊँ, बस, वही क्षण मिलन-वेला बन जायगा। —दुर्गेश

# घूँघटके पट खोल

( लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन' )

हर आदमी सुख चाहता है। ज्ञानमें हो, चाहे अज्ञानमें—सुख ही उसकी मंज़िल है। वही मानव-जीवनका प्राप्य और उद्देश्य है। मनुष्यका जीवन दु:खके लिये नहीं, पराधीनताके लिये नहीं, कभी समाप्त न होनेवाला आनन्द पानेके लिये है।

पर हम देखते हैं—बहुत ही थोड़े, गिने-चुने लोग उसे पाते हैं। अधिकांश दु:खके गलत मार्गमें भटकते-भटकते, अपनी आह और कराह लिये, एक दिन दुनियासे विदा हो जाते हैं।

क्यों है ऐसा ? सुख चाहकर भी सुख नहीं, आनन्दके लिये एड़ी-चोटीका पसीना बहाकर भी आनन्द नहीं।

कारण बहुत छोटा है। वह यह है कि हम जानते ही नहीं कि आनन्दका स्रोत क्या और कहाँ है। या यह कि हमने उस स्रोतके मुँहको ढक्कनसे बंद कर रक्खा है। दरवाजा बंद किये हुए हम प्रियतमकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और उसके न आनेपर उसकी निष्ठुरताकी शिकायत भी करते जाते हैं।

तब क्या है आनन्दका स्रोत ?

विशुद्ध, शाश्वत आनन्दके दो ही उद्गम हैं—अपनेको देना और अपनेको पाना, समर्पण और साक्षात्कार।

पर असलमें यह अपनेको देना और अपनेको पाना भी एक ही हैं। ये एक ही वस्तुके दो नाम या एक पदार्थके दो पक्ष हैं।

तुम अपनेको पाते तभी हो, जब अपनेको देते हो।

संचय ही दु:खका कारण है, उत्सर्ग और समर्पण ही आनन्दका राजमार्ग है।

कभी सोचा है कि तुमने वर्षों रात-दिन एक करके अपने सुखके लिये जो धन एकत्र किया है, उससे कभी सुख, संतोष और शान्ति मिली है ? उससे तुमने चिन्ता ही पायी है, अतृप्ति ही पायी है। बाज़ारमें जाकर उस धनसे तुम वस्तुएँ खरीद सकते हो, पर सुख नहीं।

एक दुखिया है, एक ज़रूरतमंद है। उसके पास खानेको नहीं है। जब तुम उसे द्रवीभूत होकर दिलसे कुछ देते हो, तब कैसा रसमय हो जाता है तुम्हारा मानस। इसी ज़मीनपर चलते हुए मानो तुम उससे कुछ ऊपर उठे अनुभव करते हो।

माँ अपने बच्चेके आनन्दके लिये खाना-पीना, शरीर-सुख, सोना—सब भूल जाती है। अपना सर्वस्व दे सकती है। तभी है वह माँ, तभी है उसका माहात्म्य, तभी है उसका सुख।

प्रेमी अपनी प्रेयसीके लिये क्या देनेको तत्पर नहीं होता ? क्या वह देकर, भयानक कठिनाइयाँ झेलकर भी एक अनिर्वचनीय स्वाद नहीं पाता ? स्वाद, जिसे छोड़नेको वह किसी कीमतपर तैयार नहीं; आह्लाद, सुख और आनन्द, जो उसके लिये सब चीजोंसे ऊपर हैं।

याद रक्खो—जो महान् है, बड़ा है, वही दे सकता है, वही देता है। इसे उलटकर यों भी कह सकते हैं कि जो दे सकता है, देता है, दाता है, वही महान् है। जिसके पास होता है, वही देता है। तुम्हारे पास जो है, उसे देते चलो, बाँटते चलो।

तुम्हारे पास धन नहीं है बाँटनेके लिये; न हो, परवाह नहीं। एक अपाहिजकी सेवाके लिये हाथ तो हैं।

परवाह नहीं यदि तुम्हारे पास देनेके लिये अन्न-भंडार नहीं; पर दो मीठे बोल तो तुम दुखीजनोंको दे ही सकते हो।

परवाह नहीं यदि तुम सर्वथा निःस्व हो; अपने संगी कराहते मानवके हृदयको अपने आँसूसे, अपनी करुणासे नहला तो सकते हो; उसके कलेजेको सहलाकर उसमें करकता काँटा तो निकाल ले सकते हो। थके-हारे, जीवनकी बाजी हारे हुए, लड़खड़ाते इन्सानको सहारा तो दे सकते हो; जिसकी आँखोंका, दिलका दिया भी निराशाकी आँधियोंमें बुझ चुका है, उसकी लाठी तो बन सकते हो।

ऐसा कोई आदमी नहीं है, जिसके पास देनेके लिये कुछ न हो।

ऐसा कोई समय नहीं है, जब तुम कुछ न दे सको।

यह जीवन देनेके लिये ही है। अपनेको देनेका नाम ही 'प्रेम' है। जितना ही इसे देते हो, उतना ही यह बढ़ता है। सब कुछ देकर भी वह पूरे-का-पूरा बच जाता है। वस्तुतः देना, उत्सर्ग, समर्पण और प्रेम एक ही वस्तु हैं। मानव-आत्मा शाश्वत विरहसे पूर्ण है। वह अपने स्रोतसे मिलनेके लिये विकल है। प्रेम करके ही वह अपनी अपूर्णताको पूरा करती है। प्रेम ही मानवका स्वभाव है। जबतक वह प्रेम नहीं करता, प्रेम नहीं देता, तबतक मानो मूर्च्छित है, अपने प्रति विस्मृत है, अपने स्वरूपको भूला हुआ है—उस कस्तूरी-मृगकी भाँति, जो सुगन्धकी खोजमें मतवाला बना घूमता है, जब कि स्वयं ही उस मृदु गन्धका स्रोत और स्वामी है।

इसीसे कहता हूँ, देना ही आनन्दकी स्थिति है।
यदि तुम्हारे पास धन है तो धन दो।
यदि तुम्हारे पास तन है तो तन दो।
यदि तुम्हारे पास मन है तो मन दो।
यदि तुम्हारे पास अन्न है तो अन्न दो।
यदि तुम्हारे पास वस्त्र है तो वस्त्र दो।

और यदि तुम्हारे पास यह सब कुछ नहीं है, तो मुस्कान दो।

जब कुछ भी न हो तो हृदय कहाँ जायगा ? वह तो है। बस, वह हृदय दो। इस हृदयके दानसे महान् और कुछ नहीं है।

यही है सुखका मार्ग, आनन्दका सोता—जितना अपनेको दे सको, दो।

अपने लिये सभी रोते हैं। इसीलिये दुःख है, इसीलिये छटपटाहट है, इसीलिये पराजय है, इसीलिये पीड़ा है।

कभी दूसरेके लिये रोकर देखो—एक ही बार, आजमाइशके तौरपर। वह आनन्द, वह स्वाद मिलेगा कि फिर अपने लिये रोनेका नाम न लोगे।

अपने लिये जीना ही दुःख है।
दूसरोंके लिये जीना ही सुख है।

अपने बच्चोंके लिये जियो, अपनी पत्नीके लिये जियो, अपनी माताके लिये जियो, अपने पिताके लिये जियो, अपने मित्रों, बन्धु-बान्धवोंके लिये जियो, अपने देशके लिये जियो, मानव-मात्रके लिये जियो।

जिस सीमातक तुम दूसरोंके लिये जियोगे, उसी सीमातक आनन्दके निकट होगे।

रामने पिताके वचनके लिये राज दे दिया, भरतने उस राजमें रहते हुए भी राज छोड़ दिया, कृष्णने सब कुछ पाकर भी सब कुछ छोड़ दिया, बुद्धने दुखी मानवके लिये, सुखका अनुसंधान करनेके लिये, संसारके वैभव एवं ऐश्वर्यका त्याग किया; दूसरे जियें, इसलिये ईसाने जीवन दिया। यह अपनेको उत्सर्ग करना, अपनेको देना ही परम पौरुष है।

तुम कहोगे, ये बड़ोंकी बातें हैं, इसे हम सामान्य जन कहाँ कर सकते हैं ? पर तुम भूलते हो। संसारमें कोई ऐसा प्राणी नहीं है, जो जानमें या अजानमें अपना कुछ-न-कुछ अंश देता न हो। वह देनेके लिये विवश है। बिना दिये, बिना समर्पण किये—थोड़ा या बहुत—वह एक क्षण जी नहीं सकता। आवश्यकता इतनी ही

है कि इस विवश देनको हार्दिक देनमें बदल दो। विवश होकर नहीं, स्वेच्छासे दो, दिलसे दो, प्रेमसे दो। जो प्रेमसे देता है, वही वस्तुतः देता है और जब यह प्रेम-दानकी क्रिया आरम्भ होती है तो ऐसा अनिर्वचनीय सुख मिलता है कि फिर कोई उस दानकी धाराकी गति रोक नहीं सकता। एक बार देनेका स्वाद मिला कि फिर मनुष्य देता ही जाता है, यहाँतक कि अपनेको पूरा-का-पूरा लुटा देता है।

इसलिये सुख चाहते हो, आनन्दके लिये भटक रहे हो तो जितना भी दे सको, दो। अपने जीवनकी गति संचयकी ओरसे दानकी ओर मोड़ दो।

यह जरा भी मुश्किल नहीं, बिल्कुल तुम्हारे स्वभावके, प्रकृतिके अनुकूल है। एक बार करके देखो, आजमाकर देखो; फिर किसीको कहना नहीं पड़ेगा, किसीको सिखाना न होगा। देकर स्वयं देखो, देनेमें कितना आनन्द है।

और जो अपनेको दे देता है, पूरा-का-पूरा दे देता है, वह सब कुछ पा जाता है। वह निःस्व होकर भी पूर्ण हो जाता है। वह अपनेको देकर ही अपनेको पा लेता है। यह आत्मदान जडमें प्राणकी सृष्टि करता है; यह समर्पण मरणकी सेजपर अमृत हो जाता है।

बस, आनन्दका यही एक राजमार्ग है—अपनेको लुटाना, अपनेको देना। देते चलो, लुटाते चलो और घूँघट उठाकर अपने हृदयमें छिपे परम प्रियतमको निहार लो। देखो, एक बार करके देखो; आनन्द मिलेगा, अवश्य मिलेगा।

'घूँघटके पट खोल री, तोको पीव मिलेंगे।'

# एक अजीब विवाह ! विचित्र प्रयोग !!

## [ सच्ची कहानी ]

( लेखक– डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी० )

"मैं केवल उस दुखी अभावग्रस्त जरूरतमंद कन्यासे विवाह करूँगा, जिसे सच्चे अर्थोंमें जीवन-सहचरकी आवश्यकता होगी, जिसे जिंदगीभर मेरी सक्रिय सेवाओंकी असली अर्थोंमें जरूरत होगी।"

"आपके अजीब ख्याल हैं। सर्वत्र विचित्र !"

"जी हाँ, यही नहीं ! मैं अभावग्रस्त, प्रकृतिके द्वारा कुढ़े-पिसे, हताश, निरुपाय व्यक्तिकी सेवा-सहायताको ही भगवान्की सबसे बड़ी पूजा मानता हूँ।" उन्होंने स्पष्टीकरण किया।

विचित्र उत्तर था उनका। कोई इन अटपटे विचारोंका मतलब न समझ पाता था। लोग इन दकियानूसी ख्यालोंपर फब्तियाँ कसते थे। वे प्रायः व्यङ्गके शिकार रहते थे।

× × ×

योगेन्द्र बाबू प्रारम्भसे ही पढ़ने-लिखनेमें चुस्त और स्फूर्तिमान् थे। वे अपनी योग्यताएँ बढ़ानेमें प्रयत्नशील रहते। खूब मनन और अध्ययन करते। वे परीक्षाएँ एकके बाद एक सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करते चले गये। एम्० ए० के बाद उन्होंने एल्-एल्० बी० पास किया और देखते-देखते वे ऐडवोकेट बन गये—सफल वकील !

सच्चा परिश्रमी सर्वत्र जीतता है। मेहनतसे मनुष्यके विकार दबते हैं और देवत्व पनपता है। वे आदर्शवादी तो थे ही, जनताकी सहज सहानुभूतिके पात्र भी बन गये। वकील साहबके मनमें प्रारम्भसे ही यह महत्त्वाकाङ्क्षा थी कि परोपकारका कोई ऐसा अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये, जिसकी टक्करका पुण्यकर्म किसी अन्यने कभी न किया हो।

उनके विवाहकी चर्चाएँ उनके विद्यार्थी-जीवनमें ही चल रही थीं। ऊँचे उठते और चरित्रवान् नवयुवकको सभी माता-पिता ललचायी आँखोंसे देखते हैं। फिर योगेन्द्र-जैसे सफल कमाऊ वकीलकी अच्छी आमदनी, व्यवहारमें सज्जनता और उच्च शिक्षापर अधिक-से-अधिक दहेज और रूपवती कन्याएँ भेंट करनेवाले लोगोंकी कमी न थी। कोई-न-कोई सम्पन्न

परिवार रिश्तेके लिये उनके घर आता ही रहता था, पर वे नाहीं करते जाते। कहते, "अभी विवाहके लिये सोच रहा हूँ। चुनाव करना बाकी है।" उनकी नाहींका किसीको पता न था।

कन्यापक्षके लोग ऐडवोकेट साहबके प्रति तरह-तरहसे अनुरोध करते। बड़ी दहेज, मोटर इत्यादिक देनेका लालच देते, मिन्नतें-खुशामदें करते, रुपये और उच्च स्थितिके प्रलोभन देते, इष्ट-मित्रों और सगे-सम्बन्धियोंसे सिफारिशें कराते, तरह-तरहकी कीमती भेंट पेश करते, किंतु वकील साहब केवल एक ही उत्तर देते थे—

"मैं केवल उस दुखी, अभावग्रस्त, जरूरतमंद लड़कीसे विवाह करूँगा, जिसे सच्चे अर्थोंमें जीवन-सहचरकी जरूरत होगी, जिसे आयुपर्यन्त मेरी सक्रिय सेवाओंकी आवश्यकता होगी। मैं अभावग्रस्त मानवताकी सेवाको ही भगवान्‌की सबसे बड़ी पूजा मानता हूँ।"

योगेन्द्रजीका अजीब-सा उत्तर रहता! कोई इसका व्यावहारिक स्वरूप न समझ पाता कि आखिर उनका उद्देश्य क्या है।

कई हितैषियोंने उन्हें निकटसे समझाना चाहा, पर कोई लाभ न हुआ। सुन्दर-सुन्दर युवतियोंसे विवाहके आफर आये, अमीरोंने रुपयेका लालच दिया, लेकिन वे हिमालयकी तरह अपनी टेकपर डटे रहे।

यौवन, सौन्दर्य, रूप, शृङ्गार, सेक्सके प्रति उनकी शुष्कता कुछ समझमें न आयी। सब यही समझते थे कि ये पत्थर ही बन गये हैं। गृहस्थ बसानेकी कोई इच्छा नहीं है इनमें!

अब इनकी उम्र अधिक हो चली है। क्या विवाह करते दीखते हैं! व्यर्थ इनकी खुशामद करनेसे क्या लाभ! ऐसे ही न-न करते-करते इनकी उम्र बढ़ती जायगी और आखिरमें ये बिना विवाह आजन्म कुँवारे ही रह जायँगे। जिंदगी-भर विवाहित जीवनके लिये पछतायेंगे। गल्ती अनुभव करते रहेंगे।

जिंदकी भी एक हद है। विवाह न करनेकी खबर फैलती गयी। उनके माता-पिता और कुटुम्बी धीरे-धीरे उधरसे बेखबर हो गये। उन्होंने सोचा, "योगेन्द्र शायद अकेले ही जिंदगीकी गाड़ी खींचेंगे। जीवनके सफरमें एकाकी ही रहेंगे। वे शायद हृदयहीन हैं। उनमें यौवनकी उद्दाम वासना नहीं है। सेक्सका गर्म स्पन्दन दिलमें नहीं उठता! चढ़ती जवानीमें ही योगी हो गये हैं। व्यर्थ है इनसे विवाहके लिये आग्रह करना, अनुनय और विनय!"

समय बीतता गया। उम्र बढ़ती गयी। उनकी शादीकी बात आयी-गयी हो गयी। लोगोंकी उनके प्रति दिलचस्पी कम हो गयी।

उनके सम्बन्धियोंको विश्वास हो गया कि उनके दिमागमें कोई फितूर है। भला आजके उत्तेजक वातावरणमें कोई ब्रह्मचारी रह सकता है! अपनी अप्राकृतिक जिदके लिये रोयेंगे और प्रौढ़ होकर विवाह न करनेपर आठ-आठ आँसू बहायेंगे। विवाह मानवजीवनकी एक महत्त्वपूर्ण जीवन-स्थिति है। भला, निश्चित आयु निकल जानेपर प्रौढ़से कौन मूर्ख युवती विवाह करना चाहेगी?

दिन, सप्ताह, महीने बीते। प्रभात आता और साँझ हो जाती। यहाँतक कि कई वर्ष यों ही आगे खिसक गये। किसीकी परवाह न करनेवाली यह स्वार्थी दुनिया आगे बढ़ती चली गयी। जमाना बढ़तीका है, नये नये प्रयोगोंका।

संसारमें सब अपने-अपने कामोंमें फँसे हैं। कौन, किसके लिये रुकता है? सब अपनी-अपनी निजी समस्याओंमें रेशमके कीड़ोंकी तरह लिपटे हुए हैं।

बहारें आयीं! कलियाँ खिलीं! तारे हँसे और जिंदगी तेजीसे आगे खिसकती गयी!!

× × ×

दुनियामें बहुत-से आश्चर्य होते हैं, जो हमें हैरतमें डाल देते हैं। यकायक एक दिन सबको अचरज हुआ।

क्यों? कैसा आश्चर्य?

किस अद्भुत बातका विस्मय था यह! कौन-सी रोमाञ्चकारी घटना थी यह! शादी! शादी! शादी!!

ऐडवोकेट योगेन्द्रके कुटुम्बियों और मित्रोंने कौतूहल और विस्मयसे यह सुना कि प्रौढ़ अमीर वकील साहब अब शादी करने जा रहे हैं।

सबके मनमें विस्मय और कौतूहल था। सैकड़ों प्रश्न उभर उठे मानस क्षितिजपर, काले बादलोंकी तरह!

"शायद इन्हें कोई अत्यधिक रूपवती लड़की मिल रही है अब?"

"क्या कोई ऐसा अमीर परिवार मिल गया है, जो इन्हें शानदार दहेज दे रहा है?"

"क्या किसी ऊँची कुर्सीपर बैठने या मिनिस्टर बननेकी सम्भावना है !"

"क्या गुलशनमें खिलती हुई किसी कलीने इन्हें मोह लिया है ? 'जवानी मौजे दरिया है, जवानी फिर न आयेगी'—शायरके ये शब्द शायद सच होने जा रहे हैं !"

हर किसी दोस्तको उनके द्वारा किया गया पत्नीका चुनाव देखनेकी भारी उत्सुकता थी।

× × ×

आखिर एक दिन उनका विवाह हो गया।

यह मानो एक अनहोनी-सी बात हो गयी थी।

विस्मय तब हुआ, जब विवाहके बाद उनकी धर्मपत्नी पतिके घर आयी। सभी भारी अचम्भेमें गोते लगा रहे थे। सबकी आशाओंपर तुषारापात पड़ा।

अजीबोगरीब था उनके द्वारा पत्नीका किया गया यह चुनाव !

क्यों जी, क्या बात थी उस चयन में ?

बात यह थी कि यह लड़की न रूपवती थी, न उन्हें कोई भारी दहेज ही मिला था। वह बेचारी न किसी बड़े पूँजीपति या ऊँची कुर्सीवाले अफसरकी पुत्री ही थी।

उलटे वह एक ऐसी अभागी लड़की थी, जिसकी आँखें दुर्दैवने जन्ममें ही छीन ली थीं। वह ऐसी दुखियारी थी, जिसके लिये यह सुन्दर संसार एक निरा काल्पनिक जगत् था। जो टटोल-टटोलकर ही मनुष्य और उसकी नाना वस्तुओंकी कल्पना कर सकती थी।

यह अभागी एक ऐसी अंधी कन्या थी, जिसे जीवनके हर दिन, हर पल, हर पगपर दूसरोंके सहयोग, सहायता, प्रेम, प्रोत्साहन, पथ-प्रदर्शन और सेवाकी जरूरत थी, जो बिना दूसरोंकी मददके एक पल भी न रह सकती थी। वह अंधी शौचादिसे निवृत्त होनेतकके लिये दूसरोंकी मुहताज थी। पर वह शील, स्वास्थ्य और चरित्रमें अव्वल नंबर थी, धार्मिक विचारोंकी, अपने पतिकी सेवा और प्रेममें विश्वास करनेवाली।

"अंधी लड़कीसे विवाह !" लोगोंने वकील साहबका खूब मजाक उड़ाया।

"अजी, ये सब आदर्श दिखावेके हैं। वकील साहब इस अंधी लड़कीके साथ कितने दिन निर्वाह करेंगे, भला ! अरे साहब, एक-दो महीनेमें परेशान होकर खुद ही बीवीको छोड़ भागेंगे। सारा ढकोसला धरा रह जायगा इनका।"

कोई व्यङ्ग कसकर कहता, "अजी, यह किताबी आदर्शवाद कढ़ीके उबालकी तरह है। जिंदगीमें चलता थोड़ा ही है। कहानी-किस्सों-जैसी अजीब-सी बात है। अंधी लड़कीका हाथ पकड़कर मुसीबत-ही-मुसीबत लदी कर ली इन्होंने।"

पर वकील साहब अपनी जिदपर अटल थे।

"मित्रो ! मैं तो एक जरूरतमंदकी सेवाके लिये इस सच्चरित्र अंधी कन्याको व्याहकर लाया हूँ। चाहे जो भी मुसीबतें आयें, इसे निभाऊँगा। प्रेम और निष्ठा, तप और त्याग, श्रम और कर्तव्यपालन, शील और संतोष, सहिष्णुता और सच्चा स्नेह आदिका विकास पूरी तरह गृहस्थ जीवनमें ही होता है। दाम्पत्यजीवन मनुष्यकी सर्वाङ्गपूर्णताका विद्यालय है और विवाह सेवा-सहयोगका प्रवेश।"

वाकई वे अपने इस व्रतपर अटल निकले।

आज हमें उनका विवाहित जीवन देखते हुए लगभग ढाई वर्ष हो गये। उनकी गृहस्थीकी गाड़ी अच्छी तरह चल रही है। वकील साहब अपने भाइयोंसे अलग अकेले मकानमें अपनी अंधी धर्मपत्नीके साथ रह रहे हैं। हम देखते हैं कि जो अटूट प्रेम और पारस्परिक सहयोग इन पति-पत्नीमें देखनेको मिलता है, वह न तो आजके रोमांटिक पति-पत्नियोंमें होता है न आँखोंवालोंमें, जो सारे दिन खूबसूरत औरतोंके कुचक्रमें भागते फिरते हैं और पत्नीका चुनाव करते समय जिनकी पहली शर्त चेहरेकी सुन्दरता होती है।

उत्सुकतावश हमने एक दिन वकील साहबसे पूछा, "आपका दैनिक कार्यक्रम क्या रहता है ?"

चेहरेपर संतोषकी आभा बिखेरते अतीत स्मृतियोंको सँजोते हुए उन्होंने उत्तर दिया, "भाई साहब ! जिसने मानव-सेवाको ही आजन्मव्रतके रूपमें धारण किया है, उसे अंधी सहचरीके साथ रहनेमें क्या कष्ट होगा, भला ? मैं स्वयं प्रातः-काल जल्दी उठकर अपनी जन्मान्ध धर्मपत्नीको शौचादिसे निवृत्त कराता हूँ। ऐसा कभी भी नहीं हुआ, जब मैंने पास बिठाकर खुद उन्हें भोजन न कराया हो। पत्नीके बाल गूँथनेसे लेकर उन्हें एक स्थानसे दूसरे स्थानतक ले जानेतकका सारा काम मैं घरमें खुद ही करता हूँ... और ...आपको बताऊँ ... मैं इसे एक पवित्र कर्तव्य मानता हूँ।"

"फिर आप कचहरीका पेंचीदा काम क्योंकर निपटाते हैं, वकील साहब ?"

"सवेरे घरके जरूरी कामोंसे निपटकर मैं नियमित रूपसे कचहरी जाता हूँ। घरपर मेरी धर्मपत्नीको कष्ट न हो, इसके लिये मैंने एक विश्वासपात्र नौकर रक्खा है। वह नौकर ही घरका बहुत-सा काम निपटाता है।"

"भावुकतावश आप भी कहाँ मुसीबतमें फँस गये !" मैं उनसे कहने लगा। "अंधी लड़कीको जीवनसंगिनीके रूपमें लेकर बैठे-बिठाये जन्मभरका कष्ट मोल ले लिया आपने, वकील साहब ! यह क्या अजीब बात आपको सूझी थी ?"

मेरे रिमार्कपर वकील साहब मुस्करा उठे।

"भाई साहब ! अपना-अपना दृष्टिकोण है। मैं पीड़ित मानवसेवाको ही मनुष्यका सच्चा धर्म समझता हूँ। इससे बढ़कर पुण्यकार्य क्या हो सकता है कि आदमी किसी दीन-हीन, अपाहिज, मुसीबतमें फँसे आदमीकी जीवनभर सेवा करे। दिखावटी धर्म-कर्मको मैं धोखेबाजी समझता हूँ। भला, जिस धर्म-कर्मसे किसी मुसीबतजदा जीवको प्रत्यक्ष लाभ न हो, वह थोथा धर्म मानवताकी दृष्टिसे बेकार ही तो है ! असहायको सहायता देकर, अनाथको आश्रय और अभावग्रस्तको स्वयं कष्ट सहकर सुविधा प्रदान करनेवाले व्यक्ति ही ईश्वरके सच्चे उपासक और आस्तिक कहे जा सकते हैं। मनुष्यका गौरव तो दुखी, संतप्त, पीड़ित और अभावग्रस्त मानवताकी सेवामें है। पीड़ितोंकी, चाहे वे कहीं भी हों, सेवासे ही उसकी आत्माको शान्ति मिल सकती है।"

"आत्माकी शान्तिका नाम ही तो स्वर्ग है। आपकी स्वर्गके बारेमें क्या मान्यता है, वकील साहब ?"

"लोगोंका ख्याल है कि इस धरतीसे अलग स्वर्ग ऊपर आसमानमें है।"

"हाँ, लोग स्वर्गके सम्बन्धमें बड़ी विचित्र कल्पनाएँ करते हैं। वे कहते हैं कि वहाँ पहुँचकर सभी प्रकारके शरीर-सुख मिल जाते हैं।"

"डाक्टर साहब ! मैं तो इस पचड़ेमें नहीं पड़ना चाहता कि ऊपर आकाशमें कोई स्वर्ग है या नहीं।"

"तो फिर क्या मानते हैं आप ?"

"मैं तो यह देखना अधिक अच्छा समझता हूँ कि क्या उस स्वर्ग-जैसी प्रेमभरी और सद्भावपूर्ण परिस्थितियोंको इस धरतीपर भी उतारना मुमकिन है ?"

"साधनोंकी दृष्टिसे तो धरतीमें किसी प्रकारका अभाव नहीं है।"

"यह ठीक कहा आपने। मैं स्वीकार करता हूँ—रुपया, धन-जायदाद, वस्त्र-आभूषण, सुस्वादु भोजन वगैरह सभी उत्तमोत्तम सामग्री सम्पन्न व्यक्तियोंके लिये पृथ्वीपर है।"

"क्या कुछ कमी नहीं महसूस करते इस समाजमें आप ?"

"यदि यहाँ कुछ कमी मिलती है और उसके लिये दोषी हमीं हैं तो वह भावात्मक न्यूनता ही है। सुखके साधनोंके साथ स्नेह, सौहार्द, आत्मीयतापूर्ण भावनाओंके सम्मिश्रणको ही 'स्वर्ग' कहा जा सकता है। मैंने तो स्वर्गका सुख यहीं लूटा है।"

"स्वर्ग—और पृथ्वीपर ! सो कैसे ?" मैंने कौतूहल-वश पूछा।

"यह स्वर्ग मेरे यहाँ नहीं—बल्कि आप और मेरे, सबके पहुँचकी, सबके वशकी बात है, डाक्टर साहब !"

"कौन-सा स्वर्ग ?"

"यह स्वर्ग—दाम्पत्य-जीवनका स्वर्ग क्या किसी ऊपर आकाशवाले स्वर्गसे कम सरस, सुखद, सुरुचिपूर्ण और सुन्दर है ? जिसने दाम्पत्यजीवनके स्वर्गका रसास्वादन कर लिया, वह पति क्या अन्यत्र स्वर्गकी कामना करेगा ? स्वर्ग तो आपके घरमें है ?"

"बात साफ नहीं हुई वकील साहब ! कुछ और स्पष्टीकरण माँगती है ?"

"तो इस तरह समझिये, डाक्टर साहब—पति और पत्नीका संयुक्त जीवन एक आध्यात्मिक मिलन होता है। दो भावुक और पवित्र आत्माओंका सम्मिलन और जीवन-पथपर साथ-साथ चलना इतना आनन्ददायक होता है कि वे दोनों अपने त्याग, सेवा और बलिदानद्वारा अपने इस सुमधुर सम्बन्धको परिपाक बनाये रखनेके लिये सम्पूर्ण जीवन कठिनाइयों और मुसीबतोंका खुशी-खुशी सामना करते हैं। गृहस्थी जुटानेके लिये वे दोनों काम बाँटकर कितना श्रम और उद्योग करते हैं, इसे प्रत्येक सद्गृहस्थ जानता है। परिवारके आन्तरिक मामलोंकी देख-रेख—बच्चोंके लालन-पालन, भोजन-व्यवस्था, पतिकी समुचित सेवामें सद्गृहिणियोंकी कितनी दौड़

भूप करनी पड़ती है, यह किससे छिपा है । एक-दूसरेके प्रति आत्म-उत्सर्गकी भावना निश्चय ही आध्यात्मिक तथ्य है ।"

"फिर दाम्पत्यजीवनमें दुःख, आत्महत्याएँ, तलाक, पत्नीको मार डालने या पत्नीका किसी अन्यके साथ भाग जानेकी घृणित घटनाएँ क्यों देखने-सुननेमें आ रही हैं, आजके समाजमें ?" मैंने पूछ डाला ।

जरा हँसते हुए तथा मौजूदा वैवाहिक जिंदगीपर व्यङ्ग कसते हुए वे कहने लगे, "डाक्टर साहब ! आजका युग सिनेमाके पर्देपर नाचती काल्पनिक रोमांटिक जिंदगीका जीवन है, वास्तविकतासे बहुत दूर । पति-पत्नी वैवाहिक जीवनकी जिम्मेदारीसे बचना चाहते हैं । युग-युगान्तरोंके पवित्र संस्कारोंके परिणामस्वरूप दाम्पत्य-संयोग मिलता है । एक प्राण, दो शरीरोंकी यह सम्मिलित इकाई जितनी प्रगाढ़ आत्मत्यागकी भावनाओंसे ओतप्रोत होगी, उसी अनुपातसे आपके आँगनमें स्वर्ग बिखरा पड़ा होगा । जहाँ इस आत्मीयताकी कमी होगी, वहाँ तनाव, दुःख और दारिद्र्यकी कड़ुवाहट दिखायी देगी ।"

"ठीक ! ठीक !" मैं चिल्ला उठा ।

"आप आजके जीवनसे संतुष्ट हैं क्या ?"

"आज कानूनने असंतुष्ट दम्पतियोंको तलाकद्वारा अलग होनेके अधिकार दे दिये हैं । क्या ये उन्नतिके लक्षण नहीं हैं ?"

"कतई नहीं । मैं तो आज भी मनुस्मृतिके उस उद्धरणको वैवाहिक जीवनकी सफलताका आधार मानता हूँ ।"

"क्या वह आपको याद है ?"

"हाँ, सुनिये मनुस्मृतिमें कहा गया है—

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

× × ×

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥
( अ० ३, ६०, ६२ )

"इसका अर्थ तो समझाइये, वकील साहब ?"

"अर्थ स्पष्ट है"—वे कहने लगे, "जिस कुलमें पत्नीसे पति और पतिसे पत्नी अच्छी तरह संतुष्ट रहते हैं, उसी परिवारमें सुख-सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं ।... जहाँ उनमें किसी कारण कलह होता है, वहाँ दुर्भाग्य और दारिद्र्य टिके रहते हैं । पत्नीकी प्रसन्नतासे परिवारकी शान्ति और सम्पन्नता मुखरित रहती है । यदि वह असंतुष्ट और अप्रसन्न रहती है, तो सभी ओर दुःखद परिस्थितियाँ उठ पड़ती हैं ।"

ऐडवोकेट योगेन्द्रपालको देखकर, उनसे मिलकर तथा सेवामें ही धर्म-कर्मका आनन्द-लाभ मानकर मुझे बड़ा संतोष होता है । वकील साहब सिद्धान्तरूपमें नहीं, वरन् व्यवहार-रूपमें सेवाको ही सच्चा धर्म मानते आ रहे हैं ।

मैंने देखा है कि वे अपनी अंधी धर्मपत्नीके साथ मित्र और सहायकके रूपमें रहते हैं । उसका मनोरञ्जन करते हैं । रेडियो-संगीतद्वारा तो वे सदा ही उसे खुश करनेका प्रयत्न करते हैं । दिलचस्प कथाएँ और धार्मिक पुस्तकें पढ़कर सुनाया करते हैं । पत्नीको गाने-बजानेका शौक है । वह भी भजन सुनाती रहती है ।

मौजमें आकर एक दिन वे चहक उठे, "ईश्वर मेरी इस साधनासे बहुत खुश हैं डाक्टर साहब !"

"वह क्योंकर ?" मैंने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

इतनेमें उनका नौकर उनके नन्हे पुत्रको गोदीमें खिलाता हुआ आया ।

प्यारसे उसे खिलाते हुए वे बोले—

"यह रहा मेरा ईश्वरीय उपहार ! मेरा दुलारा पुत्र ! संतान-सुख होनेसे दाम्पत्यजीवनमें सरसता आ गयी है । यद्यपि इस शिशुकी माँ टटोलकर ही वात्सल्यका दैवी आनन्द प्राप्त करती है, तथापि पतिके स्नेहपूर्ण व्यवहारसे वे पृथ्वीपर ही दाम्पत्यरूपी स्वर्गका आनन्द ले रही हैं । मनुष्यमें छिपे देवत्वके खिलनेसे ही वह अक्षय सुखका आनन्द लूटता है ।"

ऐडवोकेट साहबके दाम्पत्यजीवनसे मैं सीखा हूँ कि वास्तवमें असहायकी सेवा ही परमात्माकी पूजा है । जो समर्थ होकर किसी दुखी, संतप्त इन्सानको सच्ची सान्त्वना नहीं दे सकता, जो पङ्गु, लँगड़े या अंधेको सहारा देकर नहीं उठा सकता, वह कैसा आदमी है ! उस हृदयहीन उपासनासे क्या लाभ है, जिससे मनुष्यका अन्तःकरण पाषाण ही बना रहे ।

सचमुच मनुष्यका गौरव तो पीडितोंकी सेवामें है और उसीमें आदमीको सच्ची शान्ति मिल सकती है । खुद अपने लिये तो क्षुद्र कीड़े-मकोड़े भी जीते हैं । अपनी क्षमताका लाभ तो पशु-पक्षी भी उठाते हैं । मानव-जीवनकी विशेषता तो उसकी परमार्थ-प्रवृत्ति है ।

जो व्यक्ति पीडितोंके दुःख-दर्दको समझता है और उसे

दूर करनेके लिये जिसके अन्तरमें सेवा, सहयोग, दया, करुणा, प्रेमकी भावनाएँ उमड़ती हैं, वही मनुष्य कहलानेका अधिकारी है।

पत्थर-जैसे निष्ठुर, कंजूस और स्वार्थी बनकर शौक-मौज उड़ानेवाले व्यक्ति अपने मनसे बड़े आदमी भले ही बन लें, पर वस्तुतः उन्हें छोटा ही माना जायगा।

बड़े वे हैं, जिनके हृदय उदार हैं और जो दुखी—निराश्रितोंको सुखी बनानेके लिये स्वयं कष्ट उठानेका साहस करते हैं। भावात्मक बड़प्पन ही किसी व्यक्तिकी महानताका चिह्न हो सकता है।

जिस देश या समाजमें परदुःखकातर आदमी हों, वही बड़ा बनता है। हमारे देशमें दूसरोंके लिये जीनेवाले आदमी हुए हैं और अब भी मौजूद हैं।

असमर्थ, पिछड़ी या अल्प-शिक्षिता धर्मपत्नीको निभाना, उसे आगे बढ़ानेका प्रयत्न करना, उसकी त्रुटियोंकी ओर ध्यान न देकर प्रेमपूर्ण व्यवहार करना धर्म है। सत्य ही कहा गया है—

मेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥
(अथर्ववेद १४। १। ५२)

'हे धर्मपत्नी! ईश्वरने तुम्हें मुझे सौंपा है। तुम्हारे पालन-पोषणका उत्तरदायित्व अब मुझपर है। हम-तुम संतानयुक्त होकर सौ वर्षोंतक जियें।'

पत्नीव्रत धर्मका एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक अङ्ग है।

## पापका धन

(लेखक—श्रीरामेश्वरजी टाँटिया)

बम्बईमें अशरफ भाई नामक जवाहरातका एक दलाल था। बहुत ही नेक और मेहनती। स्वयं धनवान् नहीं था, परंतु व्यापारियोंका उसपर पूर्ण विश्वास था; इसलिये वे बहुत रुपयोंका माल उसे सौंप देते थे। एक बार एक सेठके यहाँ कुछ हीरोंकी खरीददारी हुई। अशरफ भाईने उसकी पसंदगीके लिये एक पुड़िया दी। गलतीसे उसके साथ एक पुड़िया और चली गयी, जिसमें १५ बेशकीमती नीले हीरे थे। दूसरे दिन रातमें जब वह खोजने लगा, तब उसे वह पुड़िया याद आयी और वह दौड़ा हुआ सेठके घर गया। सेठने आलमारीसे पुड़िया निकालकर दिखायी और कहा कि 'उसके सिवा उसे और कुछ नहीं मिला है।' अशरफ बहुत गमगीन होकर हीरोंके मालिकके पास पहुँचा और सारी बात ब्योरेवार बतायी। जौहरी उसकी ईमानदारीके बारेमें बहुत दिनोंसे जानता था, इसलिये ढाढ़स बँधाते हुए कहने लगा—'घबरानेकी कोई बात नहीं है, कहीं इधर-उधर रखकर भूल गये होंगे—मिल जायगी।' दस-पाँच दिनमें भी जब कुछ पता नहीं चला, तब वह फिर जौहरीके पास गया और कहा कि "मैं जानता हूँ, इस समय उन हीरोंकी कीमत इतनी अधिक है कि उसे चुकाना मेरे वशकी बात नहीं है। बड़ी कृपा होगी, यदि आप उनकी लागत कीमत मुझसे ले लें। मैं अधिकांश तो अभी दे दूँगा, बाकीके लिये रुक्का लिख दूँगा।" दूसरे दिन वह फिर सेठके यहाँ गया और उसका पैर पकड़कर रोने लगा कि 'मैं बाल-बच्चेवाला आदमी हूँ—वे सब बर्बाद हो जायँगे। आइन्दा कौन मेरा विश्वास करेगा? कौन मुझे जवाहरात सौंपेगा? मेरा तो धंधा ही चौपट हो जायगा। ऐसा लगता है, आप हीरे कहीं रखकर भूल गये हैं, एक बार फिर देख लें।' उस दिन सेठने उसे बुरा-भला कहकर घरसे निकाल दिया। इसके बाद अशरफको इतना बड़ा सदमा पहुँचा कि वह विक्षिप्त-सा रहने लगा। कभी-कभी रातमें चौंककर उठ जाता और रोने लग जाता। पत्नीके बार-बार कहनेपर मनको कड़ा करके, फिर कुछ दिनों बाद एक दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तिके साथ उस सेठके पास गया और उनके समझाने-बुझानेपर उन दोनोंने एक पंच

मान लिया। पंचके सामने अशरफने अपनी बात रखी कि 'जिस दिन मैं सेठजीके पास हीरे रखकर गया था, उस दिन और कहीं नहीं गया। इसलिये मेरी पुड़िया उस हीरोंवाली पहली पुड़ियाके साथमें भूलसे इन्हींके पास आयी है।' प्रत्यक्ष प्रमाण पूछनेपर उसने "ना" कह दी और बताया कि 'न तो मेरे पास कोई प्रत्यक्ष गवाह है और न मैंने इन्हें अपनी जानकारीमें पुड़िया ही दी थी।' उधर सेठने अपने जवान लड़केके सिरपर हाथ रखकर सौगंध खायी कि 'मेरे पास इसकी कोई दूसरी पुड़िया नहीं आयी थी।' फैसला अशरफके विरुद्ध हो गया। अचानक अशरफ सेठके पैरों पड़ गया और कहने लगा—'यह आपने क्या किया ? आपका चेहरा बताता है कि हीरे आपके पास हैं। क्यों ! आपने इकलौते जवान बेटेके सिरपर हाथ रखकर इतनी बड़ी सौगंध खायी। भगवान्‌का दिया आपके पास सब कुछ है।' इसके बाद रोता-बिलखता वह वापस अपने घर आकर ले गया।

संयोगसे तीन-चार दिनों बाद ही सेठके लड़केको ( मैनेनजाइटीज ) गर्दनतोड़ बुखार हो गया और वह दूसरे दिन ही चल बसा। उस घरमें तो शोक हुआ ही, परंतु अशरफ भी दुखी होकर रोने लगा कि उसके कारणसे यह संयोग बना। दो-तीन दिन बाद सेठ हीरेकी पुड़िया लेकर अशरफके पास आया और उसके गले लगकर बिलख-बिलखकर कहने लगा—'अशरफ भाई! मेरे मनमें लालच समा गया और मैंने बेटेसे अधिक धनको तौला। किंतु, भगवान्‌के घरमें देर है, अंधेर नहीं। मेरी पत्नी कहती है कि मेरे ही पापाचारने बेटेके प्राण ले लिये।'

# श्रीविष्णुस्मृतिमें धर्मका स्वरूप

( लेखक—डॉ० श्रीआनन्दमङ्गलजी बाजपेयी, एम्० ए०, पी-एच्० डी० )

भारतीय धार्मिक साहित्यमें 'विष्णुस्मृति'का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। परमपुरुष भगवान् विष्णुने लोकोद्धारके निमित्त इस धर्मशास्त्र अथवा स्मृतिग्रन्थकी रचना की थी, यह परम्परासे प्रसिद्ध है। इस विषयमें विष्णुस्मृतिके प्रथम अध्यायमें आयी हुई कथा इस प्रकार है—

भगवान् विष्णुने महावराहके रूपमें अवतार लेकर रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया। उन्होंने जल और स्थलका सम्यग् विभाजन करके सृष्टिका विस्तार किया। समुद्र, नदी, तालाब, पाताल, द्वीप, लोकपाल, शैल, वनस्पति, सप्तर्षि, वेद, सुरासुर, पिशाच, सर्प, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, मनुष्य, पशु-पक्षी, मेघ, इन्द्र, बिजली, यज्ञ आदिकी रचना की। इसके उपरान्त लोगोंके लिये वे अज्ञेयगति हो गये ( विष्णुस्मृति १। १३–१८ )। तब पृथ्वीने सोचा-'मेरी धृति कैसे होगी, अब मुझे कौन धारण करेगा ?' विचार करके, वह स्त्रीरूप धारण करके महात्मा कश्यपके पास पहुँची। कश्यपने धरतीकी पूजा की और उससे निवेदन किया—हे पृथ्वि! तुम जनार्दन भगवान् विष्णुके पास जाओ। अशेष-रूपमें वे ही बतायेंगे कि किस प्रकार भविष्यमें तुम्हें धृति मिल सकेगी। इस समय वे क्षीरसागरमें निवास कर रहे हैं—

> धरे तव विशालाक्षि गच्छ देवि जनार्दनम्।
> स ते वक्ष्यत्यशेषेण भाविनी ते यथा स्थितिः॥
> क्षीरोदे वसतिस्तस्य मया ज्ञाता शुभानने।
>
> ( विष्णुस्मृति १। ३१-३२ )

यह जानकर पृथ्वी क्षीरसागरमें विराजमान विष्णुके पास पहुँची। वे शेषनागपर आसीन थे। करोड़ों सूर्योंके समान उनकी द्युति थी। पृथ्वीने उन पुण्डरीकाक्ष भगवान् मधुसूदनको घुटने टेककर प्रणाम किया और बोली—"देव! आपने रसातलसे मेरा उद्धार तो कर दिया, अब आगे मुझे कौन धारण करेगा ?" ( विष्णुस्मृति १। ४५-४६ ) पृथ्वीके ऐसा प्रश्न करनेपर भगवान्‌ने उत्तर दिया—

> वर्णाश्रमाचाररताः शास्त्रैकतत्परायणाः।
> त्वां धरे धारयिष्यन्ति तेषां त्वद्भार आहितः॥
>
> ( विष्णुस्मृति १। ४७ )

'हे धरित्रि ! जो व्यक्ति वर्णाश्रमधर्मके अनुसार आचरण करते हैं और शास्त्रानुमोदित कार्य करते हैं, वे लोग ही तुम्हें धारण करेंगे । तुम्हारा भार उन्हींपर है ।'

इसपर पृथ्वीने भगवान्‌की स्तुति करके पुनः पूछा— 'आपके द्वारा संकेतित वर्णाश्रमधर्मका क्या स्वरूप है ?' भगवान्‌ने पृथ्वीको आश्वासन दिया और आसनपर बिठलाया । फिर उन्होंने रहस्यपूर्ण धर्मके विषयमें बतलाना प्रारम्भ किया, उसीका विशद विवेचन 'विष्णुस्मृति'में हुआ है । सुधी एवं श्रद्धालु पाठकोंकी रुचि-तृप्तिके निमित्त भगवान् विष्णुद्वारा बताये गये धर्मको अत्यन्त संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

धर्म धरतीको धारण करता है । धर्मसे ही मानव-समाजमें व्यवस्था बनी रहती है । अपने-अपने कर्तव्योंको पूरा करना ही धर्म है । चारों वर्णोंके कर्तव्य ही उनके धर्म हैं । ऐसे वर्णधर्म निम्नलिखित हैं—

"ब्राह्मणस्याध्यापनम् । क्षत्रियस्य शस्त्रनिष्ठता । वैश्यस्य पशुपालनम् । शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा । द्विजानां यजनाध्ययने । अथैतेषां वृत्तयः । ब्राह्मणस्य याजनप्रतिग्रहौ । क्षत्रियस्य क्षितित्राणम् । कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यकुसीदयोनिपोषणानि वैश्यस्य । शूद्रस्य सर्वशिल्पानि । आपद्यनन्तरा वृत्तिः ।" ( विष्णु० २ । ५–१५ )

अर्थात् 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके धर्म क्रमशः अध्यापन, शस्त्रधारण, पशुपालन और द्विजातिकी सेवा करना है । ब्राह्मण पढ़ाकर और यज्ञ कराकर, क्षत्रिय धरतीपर शासन करके, वैश्य पशुपालन, कृषि आदि करके और शूद्र सभी शिल्प-कार्य करके अपनी जीविका चला सकते हैं । आपत्तिकालमें अपनेसे नीचे वर्णकी वृत्ति भी अङ्गीकार की जा सकती है ।'

सभी वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मों या कर्तव्योंका पालन करते हैं अथवा नहीं, यह देखना शासकका कार्य है । सब लोग अपने-अपने धर्मोंपर चलें, इसकी व्यवस्था करना ही उसका धर्म है । विष्णुस्मृतिमें 'राजधर्म' नामसे इसका विस्तृत विवेचन हुआ है । धर्मोंका उल्लङ्घन करनेवालोंको दण्डित करना और प्रजाकी रक्षा करना राजाका कर्तव्य है । तभी समाजमें व्यवस्था बनी रह सकती है ।

प्रमुख राजधर्म भगवान् विष्णुके अनुसार इस प्रकार हैं—

'प्रजापालन, वर्णाश्रमधर्मकी व्यवस्था करना, गाँवोंकी व्यवस्थाके लिये ग्रामाध्यक्ष, शताध्यक्ष ( सौ गाँवोंके ऊपर ), देशाध्यक्ष आदिकी नियुक्ति करना, धर्मिष्ठ लोगोंको धर्मकार्यमें नियुक्त करना, ब्राह्मणोंसे कर न लेना, स्वामी, मन्त्री, दुर्ग, कोश, दण्ड, राष्ट्र तथा मित्रके प्रति अपराध करनेवालोंको मार डालना, सज्जनोंकी पूजा करना, दुष्टोंका दमन करना, मृगया-स्त्री-जुआ-मद्यपानसे अनासक्ति, वाणीसे और शस्त्रसे प्रहार करनेवालोंको दण्ड देना ।' ( विष्णु० तृतीय अध्याय )

आज धर्मकी व्यवस्था न रहनेसे इस भरतखण्डमें अनैतिकताका ताण्डवनृत्य चल रहा है । आये दिन लूट-पाट, चोरी-डकैती, हत्या-अपहरण आदि साहसिक कार्योंका विवरण अखबारोंमें देखनेको मिलता है । स्त्री-पुरुषोंकी चरित्रभ्रष्टता इन्द्रियसंयम और शासकीय नियन्त्रणके अभावमें दिनोंदिन बढ़ती जा रही है । अश्लील साहित्य और सिनेमा भारतीय युवकों तथा युवतियोंके हृदयमें वासनाकी आग प्रज्वलित करनेमें हविष्यका काम कर रहे हैं । अस्तेयका पालन करना लोगोंने भुला दिया है और चोरी-डकैतीको अपनी आजीविकाका साधन बना लिया है । रिश्वतखोरी और झूठका ऐसा बोलबाला है कि सच्चा न्याय उसके पासंग बराबर भी नहीं ठहरता । अन्यायी, दुराचारी, पापी और अपराधी झूठी पैरवीसे छूटकर मौज उड़ाते हैं और बेगुनाह लोग आजन्म कारावास और फाँसीकी सजाएँ भुगतते हैं । विष्णुस्मृतिमें मनुष्यके सामान्य धर्म निम्नलिखितरूपमें गिनाये गये हैं—

क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिन्द्रियसंयमः ।
अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुसरणं दया ॥
आर्जवं लोभशून्यत्वं देवब्राह्मणपूजनम् ।
अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते ॥
( विष्णु० २ । १६-१७ )

अर्थात् 'क्षमा करना, सच बोलना, दमन ( इन्द्रियदमन, दुष्टदमन ), पवित्रता ( मन, वाणी, शरीरकी पवित्रता ), दान करना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, अहिंसा, गुरुजनों ( माता, पिता, गुरु आदि ) की सेवा करना, तीर्थयात्रा करना, प्राणिमात्रपर दयाभाव रखना, सरलस्वभावका होना, लोभरहित होना, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करना, किसीके भी दोष न देखना—ये सभी सामान्य धर्म कहे जाते हैं ।' इनका पालन सभी वर्णोंके लोगोंके लिये हितकर है । इन्हीं रूपोंमें धर्म प्रकट होता है और धरतीको धारण करता है । सभी

लोग ( किसी भी वर्ण-जातिके हों ) इन नियमोंका पालन करके परम श्रेय प्राप्त कर सकते हैं।

मनुस्मृतिमें भी इसी प्रकार धर्मके लक्षण व्यक्त किये गये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
( ५। ९२ )

अर्थात् 'धैर्य धारण करना, क्षमा, दम, अस्तेय ( चोरी न करना ), शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धिमत्ता, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

इन्हें शाश्वतधर्म कहना अधिक उपयुक्त होगा। मानवमात्रके लिये इन धर्मोंके अनुसार चलना हितकर है। इनमेंसे 'सत्य'की महिमा बहुत है। भगवान् विष्णुने सत्यको हजार अश्वमेध यज्ञोंके फलसे भी बड़ा बतलाया है।

आजकल छात्रोंकी अनुशासनहीनता देशव्यापी हो गयी है। सत्य-ब्रह्मचर्य आदि नियमोंका पालन वे नहीं करते। गुरुजनोंको पीटते ही नहीं, उनका वध कर डालना भी पाप नहीं समझते। जादवपुर विश्वविद्यालयके उपकुलपतिकी हत्या ऐसे कलङ्कित कार्योंका एक जीता-जागता नमूना है। इसका यही कारण है कि भारतवासियोंने धर्मकी अवहेलना करके अधर्मपर चलना शुरू कर दिया है। राजधर्म स्वयं शिथिल है। छात्रोंको शाश्वतधर्मकी शिक्षा नहीं दी जाती। विष्णुस्मृतिमें छात्रोंके धर्म निम्नलिखितरूपमें प्रकट किये गये हैं—

''उन्हें गुरुजनोंको प्रिय लगनेवाले कार्य करने चाहिये। नृत्य, गीत, स्त्री, मधु, मांस, प्राणिहिंसा आदिसे कोई लगाव नहीं रखना चाहिये। गुरुको नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिये और न उनके चाल-ढाल और भाषणकी नकल ही करनी चाहिये। जहाँ गुरुकी निन्दा की जा रही हो, ऐसे स्थानपर नहीं ठहरना चाहिये।''
( विष्णु०, अध्याय २८ )

इन नियमोंका पालन करके छात्र विद्या-विनयसम्पन्न बन सकते हैं और राष्ट्रकी उन्नतिमें योग दे सकते हैं।

धर्मकी अवमानना करने और उसकी अनावश्यकता मान लेनेसे मानव-कल्याणके लिये बनी हुई मर्यादाएँ टूट गयी हैं। जो राजनीति पहले शासकोंमें व्यवस्था बनाये रखनेके लिये थी, अब वही छल-फरेब, कूटनीति और झूठका पर्याय बनकर रह गयी है और इन्हीं अवगुणोंका प्रचार-प्रसार हर क्षेत्रमें हो रहा है। इसीलिये मनुष्य-समाजका सच्चा हित नहीं हो पा रहा है। यही धर्मका ह्रास है। पुराणोंमें आया है कि 'कलियुगमें धर्मका ह्रास हो जायगा और सभी वर्ण शूद्रत्व या दासभावको प्राप्त हो जायँगे।' यह उक्ति भारतकी वर्तमान स्थितिमें ज्यों-की-त्यों लागू हो रही है। चपरासीसे लेकर राष्ट्रपतितक वेतन-भोगी नौकर हैं और जनताकी सेवा करते हैं, साथ ही स्वयं भी जनताके अङ्ग हैं; अतएव सेवावृत्ति ही युगधर्म बन गया है। अध्यापक, जो पहले समाजमें सर्वोच्च स्थान रखते थे, प्रचण्ड योद्धा और चक्रवर्ती सम्राट् जिनका चरण-वन्दन करके अपना अहोभाग्य समझते थे, आज वेतनभोगी नौकरमात्र हैं, गौरवान्वित गुरुजन नहीं।

इस स्थितिमें धर्मको किस रूपमें स्वीकार किया जाय, यह प्रश्न स्वतः उठ खड़ा होता है। वर्णाश्रमधर्म पूरे समाजका व्यवस्थित धर्म था। आज व्यवसायोंकी विविधता और अर्थ-प्रधान दृष्टि बढ़ जानेसे व्यक्तिधर्म प्रबल हो उठा है। इस दशामें भी विष्णुस्मृतिकी धर्मचर्चा हमारी सहायता कर सकती है—

इदं शरीरं वसुधे क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः॥
( विष्णु० ९६। ९७ )

अर्थात् ''मनुष्यका शरीर 'क्षेत्र' है, इसे जाननेवाला 'जीव' 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है।''

अतएव प्रत्येक व्यक्ति ऊपर बतलाये गये दया, क्षमा, शौच, इन्द्रियसंयम, अहिंसा आदि शाश्वत धर्मोंका पालन करके समाजमें व्यवस्था पैदा कर सकता है। सभी लोग जब इन धर्मोंपर चलेंगे, तब अपराध और पाप स्वयमेव तिरोहित हो जायँगे और समाजमें सुख-शान्तिका निवास होगा। यही वैष्णवधर्मका उपदेश है, जिससे सबका कल्याण सम्भव है।

# मानव-जीवनकी क्षणभङ्गुरता

( रचयिता—महाकवि 'द्विजेश' )

ताने साहम्याने जे, जरी के नमगीर ताने,<br>
ताने चौक चाँदनी, बिचित्र छत्र ताने हैं।<br>
सेर सम सिर ताने, समसेर कर ताने,<br>
तिय सौं नजर ताने, मद सौं मताने हैं॥<br>
ये तौ सब ताने, अंत आनि धरि ताने जबै,<br>
तब तौ 'द्विजेस' ये न ताने और बाने हैं।<br>
दीप-से बुताने सो दखिन पायताने ताने,<br>
ताने एक चादर ते सोवत उताने हैं॥

माटी सौं प्रगटि पुनि माटी में प्रगट भए,<br>
पुनि पै 'द्विजेस' लागे पीवन हु माटी में।<br>
माटी बीच खेलि, खाय माटी उपजत अन्न,<br>
ह्वै प्रसन्न मन को लगाए प्रिया माटी में॥<br>
जातें अस माटी ताहि माटी सौं न जाने मूढ़,<br>
माटी करि जिंदगी बिताई वृथा माटी में।<br>
सो ये नर माटी; नर माटी सम सोये,<br>
चार काँधे नर माटी मिले जात नर माटी में॥

मुकुट मँदीर बाँधे, भूषन सरीर बाँधे,<br>
चीर बाँधे चेरे जहाँ चाकरी बजाते हैं।<br>
द्वार पै मतंग बाँधे, तरल तुरंग बाँधे,<br>
संग बाँधे सेना सेनापति जे कहाते हैं॥<br>
हरि संग नेम बाँधे, तिय संग प्रेम बाँधे,<br>
आकबत बाँधे से 'द्विजेस' दरसाते हैं।<br>
जिन सब बाँधे, तिन्हें बाँधे-बाँधे बाँस बीच,<br>
काँधे. लै कहार चार कहरत जाते हैं॥

# 'सँभल-सँभल पद धरना, राही ! यह पथ है काँटोंका'

( लेखक—श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल )

किसी जगह पहुँचनेके लिये अनेक मार्ग होते हैं। अगर हम घने जंगलोंकी झाड़ियोंमेंसे जायँ तो हमारे पाँवमें काँटा लग सकता है। हो सकता है कि मार्ग नजदीक हो, किंतु कठिन हो। दूसरे मार्ग पहाड़ोंपर सड़क काटकर बनाये जाते हैं। वे मार्ग चलनेमें तो लंबे होते हैं, पर होते बड़े आसान हैं। उनमें काँटा लगनेकी सम्भावना ही नहीं होती। उनपर मनुष्य एक चालसे चल सकता है। घने जंगलोंकी झाड़ियोंमें भयंकर जानवरोंका सामना भी हो सकता है, किंतु आम सड़कपर जंगली जानवर प्रायः कम आते हैं।

हर एक मनुष्य अपने स्थानपर खड़ा है; उसके चलनेके स्थान तो भिन्न हैं, किंतु पहुँचनेका स्थान एक है।

एक आदमी चंडीगढ़में हो तो वह बसद्वारा दिल्ली पहुँच सकता है, किंतु बंबई-स्थित यात्रीको पहुँचनेके लिये अपने-अपने अधिकारके अनुसार रेलगाड़ी या विमानसे जाना होगा। आजकल विमानकी यात्रा इतनी सरल एवं सुगम हो गयी है कि नये जेट विमानसे न्यूयार्कसे लंदनकी जो यात्रा सात घंटेमें तय होती थी, वह अब तीन घंटेमें ही हो जाती है। दिल्लीसे बंबई जानेमें पहले तीन घंटे लगते थे; पर अब वही मुसाफिरी डेढ़ ही घंटेमें होती है। हो सकता है, आगे यह यात्रा एक घंटेमें ही हो जाय। जितना मार्ग ऊँचा होता है, उतने ही उसके अधिकारी कम होते हैं। हम कभी-कभी बंबईसे लोनावला जाते हैं। रास्तेमें साधु-संतों एवं यात्रियोंको सड़कपर चलते देखते हैं। मार्गपर अपने-अपने अधिकारानुसार कोई पैदल, कोई साइकिल या कोई किसीके कंधेपर चढ़ा, कोई मोटर, कोई बस और कोई रेलमें बैठकर अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेकी चेष्टा करता है। ऐसे ही अपने-अपने अधिकारानुसार साधक भी परमात्मातक पहुँचनेके लिये अनेक मार्ग अपनाते हैं। तीव्र जिज्ञासु वेदान्तका विहंगम-मार्ग अपनाकर शीघ्र ही अपने लक्ष्यतक पहुँच जाता है और दूसरे भक्तिमार्गपर चलकर, इस जगत्‌को हरिका रूप समझकर सर्वत्र हरिका दर्शन करते हैं।

प्रायः देखा गया है कि पहाड़ी लोग जब चलते हैं, तब वे पगडंडीसे ही जाते हैं। उन्हें वही मार्ग अनुकूल पड़ता है, मोटरकी सड़क उन्हें अनुकूल नहीं पड़ती।

परमात्माके मिलनका मार्ग काँटोंका नहीं, वह तो फूलोंका है। जो परमात्माकी ओर एक कदम बढ़ाता है, परमात्मा भी उसका स्वागत करनेके लिये एक कदम आगे आ जाता है। हमारा एक कदम दो फुटका होगा, किंतु परमात्माके कदमका अंदाजा लगाना कठिन है; क्योंकि वह उतना ही बड़ा होता है, जितना बड़ा हमारा हृदय होता है। अगर हमारा हृदय छोटा है तो वह कदम छोटे-छोटे रखता है और यदि हमारा हृदय विशाल है तो वह भी बड़े-बड़े कदम रखता है। उसकी महिमा वही जानता है। भगवान् वामनने दो कदमोंमें सारी त्रिलोकीको नाप लिया था और तीसरा पाँव रखनेके लिये राजा बलिसे उन्होंने भूमि माँगी। इसलिये जो मनुष्य भगवान्‌के कदम छोटे मानता है, उसे उतनी ही निराशा होती है। भगवान्‌के मार्गपर चलनेवालोंके लिये प्रतिकूलता भी अनुकूलता हो जाती है। उन्हें काँटे भी संदेशवाहक और सूचक हो जाते हैं। वे कानोंके अंदर कोई-न-कोई संदेश कह जाते हैं। काँटे कहते हैं कि पाँवमें काँटेका चुभ जाना भी ज्ञानका सूचक है, परमात्माका सूचक है। पथ-पथपर भगवान् अनेक रूपोंमें मार्गदर्शन करता है। इसलिये साधकका मार्ग काँटोंका नहीं, किंतु फूलोंसे आस्तीर्ण है, जिसपर

चलता हुआ साधक प्रसन्नतापूर्वक परमात्मातक पहुँच जाता है। परमात्मा बड़ा दयालु है, वह तो हमारी रुचिकी ओर देखता है। जैसी हमारी रुचि होती है, उसे ही वह पूरी कर देता है। यदि हमारी रुचि संसारके पदार्थोंको भोगनेकी होती है तो हमें उनमें डाल देता है और यदि परमात्माके मिलनेकी होती है तो परमात्मा स्वयं मिलनेके लिये आतुर हो उठता है। परमात्मा तो नित्य-निरन्तर जागता और प्रतीक्षा करता रहता है कि मेरा भक्त मेरी ओर देखे; किंतु भक्तको फुर्सत ही नहीं रहती कि वह प्रभुकी ओर देखे। अगर भक्त एक बार भी आँख उठाकर देख लेता है तो वह भगवान्‌को अपनी आँखके सामने ही पाता है। भगवान्‌का कहीं अभाव नहीं। वह एक पल भी विश्राम नहीं लेता। परमात्माके मिलनका मार्ग उनके लिये नहीं है, जो हृदयसे तो परमात्मासे मिलना चाहते नहीं, किंतु परमात्ममिलनका ढोंग रचते हैं। वे जाहिरा दोस्ती कर रहे हैं परमात्मासे, किंतु उनका हृदय संसारोन्मुख है; ऐसी दशामें उनके मार्गमें काँटे दिखायी दें तो कोई आश्चर्य नहीं। वस्तुतः देखा जाय तो संसारोन्मुखता ही काँटोंका मार्ग है। भोगसे रोग उत्पन्न होता है और रोग मनुष्यके जीवनमें काँटे हैं। इसके विपरीत योगका मार्ग काँटोंका नहीं; क्योंकि उसमें सुख, शान्ति और आनन्द—सभी सहज ही प्राप्त होते हैं।

साधक अपने-अपने अधिकारके अनुसार भोग, रोग अथवा योगका मार्ग चुन लेता है। योग है परमात्मासे मिलन और भोग है संसारमें पतन।

---

# पूर्णिया श्रावक

## [ एक लघु-कथा ]

( लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन, एँडवोकेट )

जीवनभर अभावग्रस्त रहे, किंतु जीवनके किसी क्षण भी उन्होंने असत् मार्गसे अर्थोपार्जनकी कल्पनातक नहीं की। उन साधक श्रावकका नाम था पूर्णिया।

अर्थाभावके कारण व्यावसायिक क्षेत्रमें वे प्रवेश न पा सके, फलस्वरूप वे रुईकी पूणियाँ कात-कातकर अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

प्रतिदिन दो घड़ी स्वाध्याय करना एवं एक स्वधर्मी बन्धुको भोजन कराना उनके जीवनके आवश्यक अङ्ग थे। साधन सीमित थे, अतः अतिथि-सत्कारके फलस्वरूप कई बार पति-पत्नीको निराहार रह जाना पड़ता था। पूर्णियाजीका जीवन प्रामाणिकता, सत्यता एवं साधनासे युक्त था।

एक दिन पूर्णियाजी स्वाध्याय कर रहे थे। प्रयत्न करनेके बाद भी मन स्थिर नहीं हो पा रहा था। विचारोंमें चञ्चलता मनकी एकाग्रताको भङ्ग कर देती थी। वे घबरा उठे—उनके मनमें द्वन्द्व चल रहा था। स्वाध्याय-काल समाप्त होनेपर पूर्णियाजी उठे और अनमने-से जाकर टूटी चारपाईपर लेट गये। धर्मपत्नी पतिदेवके क्लान्त मुखको देखकर परेशान हो उठी और उनके पास आकर बोली—'नाथ! क्या तबियत ठीक नहीं है?'

'नहीं? तबियत तो ठीक है, पर आज हृदयमें कुछ हलचल-सी मच रही है। साधना-कालमें, जीवनमें प्रथम बार आज मुझे शान्ति नहीं मिली। यह मेरे जीवनमें एक नवीन अनहोनी घटना है। विचार कर रहा हूँ, कारण नहीं मिल रहा है। एक शङ्काके समाधानमें सहयोग दो कि आज अपने घरमें कोई अनीतिका पैसा तो नहीं आ गया है?'

पत्नी विचारोंमें डूब गयी और कुछ ही क्षण बाद बोली—'नाथ ! जीवनमें आज प्रथम बार एक भूल कर बैठी। चूल्हा जलानेके लिये घरमें आग नहीं थी। पड़ोसीके यहाँ आग लेने गयी और उसके ही गोबरके कंडेपर आग उठा लायी। फिर कार्य-व्यस्तताके कारण भूल गयी कि वह कंडा वापस करना है। कंडा वापस नहीं किया, इस अपराधको क्षमा करें स्वामी !'

तुरंत पड़ोसीका वह कंडा पड़ोसीके घर भेजा गया। पूर्णिया श्रावकको परम शान्ति मिली। उनके हृदयका द्वन्द्व समाप्त हो गया। अब प्रसन्न थे, बहुत प्रसन्न········।

# जय बजरंग

## [ सच्ची घटनाके आधारपर ]

( लेखक—श्रीसत्यनारायणजी मालपाणी 'सिद्धान्त-शास्त्री' )

दैनिक व्यवसायसे निवृत्त होकर सदैवकी भाँति श्रीचन्द्र साहुकार अपने आराध्यदेवके पवित्र प्राङ्गणकी ओर बढ़ रहा था। निशानाथके उज्ज्वल प्रकाशकी श्वेत चादर ओढ़े रजनी पथिकोंका मार्गदर्शन कर रही थी। सूनी रात्रिमें पैरोंकी आहट स्पष्ट सुनायी दे रही थी। मानव-छाया कच्चे रास्तेमें बढ़ी जा रही थी। पैर काँटोंकी बाड़के पास रुके। फाटक खोलकर श्रीचन्द्रने अंदर प्रवेश किया। चाँदनी नीमके वृक्षसे छनकर बालाजीकी गुमटीपर थिरक रही थी। उसने घीका दीपक जलाया और बालाजीकी आरती उतारी। वह अपनी साधनामें तन्मय हो, पद्मासन लगाकर बैठ गया। रात लंबी होती गयी। भक्त अपने इष्टदेवकी प्रतिमाकी ओर टकटकी लगाये खोया-सा बैठा था। स्वच्छ-शान्त वातावरणमें धूपकी सुगन्ध घुलकर उड़ रही थी। बालाजीकी विलक्षण मूर्ति दीप-ज्योतिके प्रकाशमें देदीप्यमान हो रही थी। आज पूर्णिमा थी। आधी रातको साधकने अपनी साधनाका चरण समाप्तकर वापस घरकी ओर प्रस्थान किया।

मारवाड़में कुचामन देहातके जागीरदार श्रीशिवनाथ-सिंहजी थे, जिन्होंने गाँवकी सुरक्षाके लिये रातमें पहरेदारोंकी नियुक्ति कर रखी थी। श्रीचन्द्र बालाजीकी पूजा-अर्चना करके घर आ रहा था। उसी वक्त पहरेदारोंने उसका परिचय लेकर रिपोर्ट ठाकुर साहबको भेज दी। आधी रातके बाद श्रीचन्द्रका मिलना शङ्कास्पद था, परंतु भक्त निस्संकोच दृढ़ विश्वासके साथ बालाजीकी गुमटीपर जाता और नित्य-क्रिया करके घरपर आता। कभी-कभी जब वह आराधना करने बैठता, तब उसके कानोंमें शब्द सुनायी देने लगता और वह हँसने लगता।

एक रात चोरोंने किसी सेठके यहाँसे धन चुरा लिया, जिसकी शिकायत कोतवालीपर की गयी। कोतवालने घुड़सवार चारों ओर दौड़ा दिये, किंतु चोरोंका कहीं पता नहीं चला। हताश होकर पुलिसवालोंने भक्त श्रीचन्द्रके माथे चोरीका आरोप लगा दिया और अपनी रिपोर्टमें लिख दिया कि श्रीचन्द्र बहुत राततक इधर-उधर घूमता रहता है, अतः चोरी इसके अलावा और कोई नहीं कर सकता। ठाकुर साहबके कान पहलेसे ही भरे हुए थे। तत्काल श्रीचन्द्रको पकड़कर ठाकुर साहबके डेरेमें बुला लिया गया। श्रीचन्द्रके सामने आते ही ठाकुर साहबने क्रोधमें भरकर पूछा—'तुमने रातको चोरी की है ? क्या इसीलिये तुम आवारागर्दीमें रातको घूमते फिरते हो ? क्यों नहीं तुमको बंदीगृहमें डाल दिया जाय ?'

श्रीचन्द्र अवाक् हो ठाकुर साहबके चेहरेकी ओर देखने लगा और थर-थर काँपने लगा। उसके पैरोंके तलेसे जमीन खिसकने लगी। सिर चकराने लगा। सोचा, यह अनहोनी कहाँसे आ पड़ी ? मुझसे ऐसी कौन-सी गलती हुई है, जिसके फलस्वरूप चोरीका कलङ्क मेरे सिरपर लगा है ? नाना प्रकारके कल्प-विकल्प उसके मस्तिष्कमें आकर टकराने लगे। वह मूर्तिवत् खड़ा रहा।

प्रत्युत्तर न मिलनेपर ठाकुर साहबको भी श्रीचन्द्र सोलहों आने चोर जँच गया। वे क्रोधित हो बोले—'बतलाओ, चोरीका माल कहाँ है ? वरना जानते हो, क्या

होनेवाला है ?' श्रीचन्द्र प्रभुका स्मरण कर मन-ही-मन कहने लगा—'प्रभु ! यह सब क्या हो रहा है ?' साहसपूर्वक हाथ जोड़कर बोला—'ठाकुर साहब ! मैंने आजतक कोई चोरी नहीं की । मैं निरपराध हूँ ।' ठाकुर साहब तपाकसे बोले—'तुम झूठ बोलते हो । चोरी करनेवाला कभी भी नहीं कहता कि मैंने चोरी की है । सीधी अँगुलियोंसे घी कभी नहीं निकलता । ले जाओ इसे, हवालातमें बंद कर दो ।'

ठाकुर साहबके फैसलेके खिलाफ बोलनेकी किसीमें शक्ति नहीं थी । उसे तत्काल हवालातमें बंद कर दिया गया । रातमें श्रीचन्द्रको यातनाएँ दी गयीं, किंतु सत्यका पुजारी झूठ नहीं बोल सका । बार-बारकी यातनाओंसे घायल श्रीचन्द्र 'जय बजरंग, जय बजरंग'का उच्चारण करने लगा । अन्तमें पुलिसके सब प्रयत्न निष्फल हो गये । श्रीचन्द्र रातभर बालाजीको याद करता रहा ।

उषाकी लालिमा आकाशमें छाने लगी । मन्द-मन्द प्रकाशकी किरणें फैलने लगीं । पक्षीगण घोंसलोंसे बाहर चहकते हुए स्वच्छन्द भ्रमण करने लगे, किंतु भक्त श्रीचन्द्र आज हवालातमें बंद था । दूसरे दिन पुलिसके सिपाहीने फिर श्रीचन्द्रको ठाकुर साहबके सामने पेश किया । ठाकुर साहबने पुनः श्रीचन्द्रसे चोरीकी तहकीकात की, किंतु किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे । आखिर उपस्थित कर्मचारियोंमेंसे एकने कहा—'ठाकुर साहब ! यह ऐसे सच बोलनेवाला नहीं है । इसके हाथमें कल लोहेका गरम गोला रखनेसे काम बनेगा ।' यह सुझाव ठाकुर साहबको भी जँच गया । अतः उन्होंने हुक्म दे दिया ।

लोहेके सींकचोंमें बंद, बेड़ियोंसे बँधे श्रीचन्द्रने रातको 'जय बजरंग, जय बजरंग'की रट लगा दी । ज्यों-ज्यों वह धुन लगाता था, त्यों-त्यों उसकी आत्मामें प्रकाश होता जाता था । आत्मबल बढ़ रहा था । वह आँखें मूँदकर अपने बालाजीका ध्यान करता । उसके मुखपर मुस्कान दौड़ती । सुबह होते ही सारे गाँवमें चर्चा फैल गयी । भक्तकी परीक्षा-का समय नजदीक आता गया । जलेबी चौकमें ठाकुर साहबका दरबार लगा । काफी संख्यामें गाँवके लोग इकट्ठे हो गये । अग्नि प्रज्वलित की गयी और काले लोहेके गोलेको गरम किया जा रहा था । घंटेभरके तापकी गरमीसे उसे लाल किया गया । श्रीचन्द्र लुहाराको जनसमूहके बीच खड़ा करके पूछा गया—'अबभी चोरीका माल बतला दो ।' किंतु भक्तने कहा—'नहीं, मैंने चोरी नहीं की ।'

लंबे चीमटोंसे लाल गर्म लोहेके गोलेको उठाया गया । भक्तके चेहरेपर ओज था । वह 'जय बजरंग, जय बजरंग' का उच्चारण करने लगा । श्रीचन्द्रके दोनों हाथोंकी हथेलीके ऊपर पीपलका पत्ता रखकर उसपर गर्म लोहेके गोलेको रख दिया गया । वह पंद्रह मिनटतक गोलेको हाथमें थामे, वहीं खड़ा 'जय बजरंग, जय बजरंग' बोलता रहा । यह देखकर उपस्थित समुदाय चकित हो गया । श्रीचन्द्र अपनी परीक्षामें सफल हो गया । वह ठाकुर साहबके डेरेसे निकलकर बालाजीके पास आकर बोला—'हे बजरंगबली ! यह सब तेरी ही लीला है, इसे तू ही सँभाल ।' यह कहकर पासके कंडेके ढेरपर गर्म लोहेके गोलेको गिरा दिया । तत्काल वह ढेर जलने लगा और थोड़ी देरमें जलकर खाक हो गया, परंतु भक्त श्रीचन्द्रकी हथेलियोंमें किसी प्रकारका जलनेका दाग-तक नहीं हुआ । बालाजीके भक्तकी भगवान्ने रक्षा की और उसने अपनी सचाईका पक्का सबूत दे दिया ।

ठाकुर साहबने अपनी भूलपर क्षमा माँगी और श्रीचन्द्रका नागरिक अभिनन्दन कर उसे पुनः सम्मानित किया तथा बालाजीका मण्डप जागीरके खर्चेसे बनानेका आदेश दे दिया ।

सच है, भक्तकी रक्षा करनेके लिये उसके इष्टदेव सदैव उपस्थित रहते हैं । बालाजीने अपने भक्त श्रीचन्द्र लुहाराकी लाज बचायी । कुछ दिनों बाद श्रीचंन्द्र गाँव छोड़कर दूसरे स्थानके लिये प्रस्थान कर गया । आज भी वह बालाजीकी मूर्ति श्रीरुघनाथजीके मन्दिरके सामने लुहारावाला बालाजीके नामसे मण्डपमें विराजमान है ।

# ईश्वरीय प्रतिध्वनि—अन्तःकरणकी आवाज

( लेखक—श्रीमोरेश्वर सीतारामजी पिंपले )

"What a piece of work is man! How express and admirable in action, how like an angel in apprehension and how like a God."

सुंदर विहंग सुमन-सुंदर मानव, तुम सबसे सुंदरतम।
तुम मेरे मनके मानव, मेरे गानोंके गाने॥'
और क्या तुम भी सुनते नहीं, विधाताका मङ्गल वरदान।
शक्तिशाली हो, विजयी बनो, विश्वमें गूँज रहा जयगान॥

१. मानव प्रभु-सृष्टिका सौन्दर्य है। सृष्टि-रचनाकी विशिष्ट कलाकृति है। दयालु प्रभुने मानव-निर्माणपर ही विशेष महत्त्वकी असीम अनुकम्पा की है। मानवको बुद्धियोगका वैशिष्ट्य प्रदानकर पशुतासे ऊपर उठाया है। समस्त विश्वरचनामें केवल मानवको ही विवेकरूपी अमोघ अस्त्रसे विभूषित किया है। इस देन-विशेषसे सृष्टिकर्ता भगवान्का प्रयोजन यही है कि विवेकरूपी अमोघ अस्त्रका सदुपयोग कर मानव बर्बरता एवं पशुतासे ऊपर उठे, सच्चरित्रवान् सत्पुरुषकी भाँति स्वार्थकी आहुति दे, परहित—परमार्थके ही पावन यज्ञमें दुर्लभ मानव-जीवन समर्पितकर, जीवनके परम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिका सम्पादनकर अन्तमें मोक्षगतिको प्राप्त करे। इस तरह दयालु प्रभुके वरदानका सदुपयोग कर अपना मानव-जन्म सफल एवं सार्थक बनाये। तात्पर्य यह कि दयालु प्रभुने केवल मानवको ही विवेकरूपी वरदान इसलिये दिया कि वह उसका सदुपयोग कर यथार्थ मानव बने।

२. हमारे समस्त वेद-पुराण एक स्वरसे मानव-जन्मको 'सुर-दुर्लभ' प्राप्ति घोषित करते हैं और—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

—का मधुर संगीत सुनाते हैं। ऐसी स्थितिमें प्रखर तपस्यासे अर्जित एवं विवेकरूपी अमोघ अस्त्रसे विभूषित मानव-जीवनको वृथा गँवानेकी प्रवृत्तिको मनुष्यकी दुर्बुद्धि नहीं तो और क्या कहा जाय?

३. पहेली-सा जीवन है व्यस्त, उसे सुलझानेका अभिमान।
बताता है विस्मृतिका मार्ग, चल रहा हूँ बनकर अनजान॥

निर्माता प्रभुने पहेलिकाके रूपमें मानव-शरीरमें अन्तःकरणरूपी एक अलौकिक यन्त्रकी योजना की है। यह एक ऐसा अनोखा अतुलनीय यन्त्र है, जो मनुष्यको सत् और असत्, भले और बुरे, नैतिक और अनैतिक, पाप और पुण्यकी अचूक परख कराता है। आडम्बरयुक्त वैज्ञानिक यन्त्र तो समय पाकर बिगड़ भी जाते हैं, समय-समयपर असफल भी हो जाते हैं; किंतु ईश्वर-निर्मित यह यन्त्र तो असफलता जानता ही नहीं, न वह कभी बिगड़ता ही है। वह तो सदा-सर्वदा क्रियाशील ही रहता है। मानव-अन्तःकरण ऐसा अनोखा विश्वस्त बैरोमीटर है, जिसकी परखमें गल्ती होती ही नहीं। मनुष्य यदि जीवनमें केवल अन्तःकरणको ही अपना गुरु स्वीकारकर अन्तःकरण-निर्धारित मार्गका ही अनुसरण करे तो विश्वमें कोई सामर्थ्य नहीं, जो उसकी सच्चरित्रता-प्राप्तिमें बाधा उत्पन्न कर सके।

४. हम और आप—सभी इस निर्विवाद सत्यसे भलीभाँति परिचित ही हैं कि हम जब कभी किसी सत्कार्यकी ओर प्रवृत्त होते हैं, तब हमारा अन्तःकरण भी अंदरसे गूँज उठता है—'प्यारे! अवश्य करो।' किंतु इसके विपरीत जब हम किसी कुकर्मकी ओर प्रवृत्त होते हैं, तब तो हमारा अन्तःकरण विद्रोह करनेमें चूकता ही नहीं। वह तुरंत ही आपत्ति प्रस्तुत करता है और कुकर्मसे हमें मना करता है—और गूँज उठता है—'प्यारे! इसे कदापि न कर!'

५. अन्तरात्मा कहती है—

विश्वभर सौरभसे भर जाय,
सुमनके खेलो सुन्दर खेल।

मानवका अन्तःकरण उसके शरीरका कोई अवयवमात्र नहीं। वह मानव-शरीरमें ईश्वरका प्रतिनिधि है, जो प्रत्येक पल मनुष्यके कर्मोंका लेखा-जोखा तैयार किया करता है। अन्तःकरणके ही माध्यमसे निर्माता प्रभु मनुष्यसे वार्तालाप करते हैं। अन्तःकरणके ही माध्यमसे महान् संरक्षक भगवान् मानवको अपना संरक्षणकारी संदेश पारित करते हैं। सारांश यह मनुष्यका अन्तःकरण ईश्वर-संदेश-वाहक है।

६. डरो मत, अरे अमृत-संतान! अग्रसर है मङ्गलमय वृद्धि।
पूर्ण आकर्षण जीवन-केन्द्र, खिंची आयेगी सकल समृद्धि॥

मानव-अन्तःकरण ही मानवका यथार्थ मित्र भी है।

सांसारिक मित्र तो सदैव साथ रह भी नहीं सकते, किंतु यह मित्र तो सदैव साथ ही रहता है—वह तो मनुष्यको छोड़ता ही नहीं। सदा-सर्वदा साथ रहता है, सजग—क्रियाशील ही रहता है। सांसारिक मित्र तो स्वार्थ आड़े आते ही मुँह भी मोड़ सकते हैं—स्वार्थ-साधु हो सकते हैं—धोखा भी दे सकते हैं; किंतु अन्तःकरणरूपी मित्रका तो कोई स्वार्थ ही नहीं। मनुष्यका हितसाधन और अहितसे रक्षा—यही उसका एकमात्र कार्य है। उसका तो अन्य कार्यक्रम ही नहीं और वह अपने कार्यक्रममें सतत जुटा ही रहता है। इतना सच्चा अद्भुत पहरेदार है कि वह बुराईका प्रवेश ही नहीं होने देता—न मनुष्यको सन्मार्ग छोड़ कुमार्गपर ही जाने देता है।

७. देवोंकी विजय, दानवोंकी हारोंका होता युद्ध रहा।
संघर्ष सदा दुर अन्तरमें जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा॥

अन्तःकरणके उपर्युक्त महान् संरक्षणकारी एवं कल्याणकारी सत्कार्यकी सत्यतासे सभी भलीभाँति परिचित हैं—उसे निर्विवाद स्वीकार भी करते हैं और यह भी भलीभाँति जानते हैं कि अन्तःकरणके रूपमें ही महान् संरक्षक भगवान् मनुष्यके शरीरमें विराजमान हो, उसके जीवन-रथका सारथित्व करते हैं। इस यथार्थ वस्तुस्थितिमें मनुष्यका यही परम कर्तव्य हो जाता है कि अन्तःकरणके माध्यमसे प्राप्त ईश्वरके दिव्य संदेशको ही ध्रुवतारा मानकर वह उसीका अनुसरण करे। आप देखेंगे कि इसी एकमात्र नियमके पालनमें ऐसी अद्भुत सामर्थ्य है कि इसके ही पुण्य-प्रतापसे समस्त सद्गुण आप-ही-आप आपके पास उतर आयेंगे और आप एक सच्चरित्रवान् सत्पुरुष महामानवके श्रेष्ठ पदको प्राप्त हो सकेंगे। दुर्गुण-दुराचार तो आपके पास फटकतक न पायेंगे। आपका समस्त जीवन पवित्र, निर्मल एवं सदाचारयुक्त हो, आप सदा-सर्वदा परहितके ही पावन यज्ञमें रत रहेंगे।

८. परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

हमारे समस्त वेद-पुराणोंने एक स्वरसे परहित एवं परोपकारकी ही महिमा गायी है। परहितको ही श्रेष्ठ मानव-धर्म-प्रतिपादित किया है और पर-पीड़ाको अधमसे अधम महापाप घोषित किया है। अन्तःकरणके संदेशका पालन करनेवाला—अन्तःकरणका शिष्य भी इसी पावन संदेशको अपने जीवनकी आधार-शिला बना, इसी राजपथका अनुसरण करता है। परहितके ही पुण्य-प्रतापसे उसका समस्त जीवन एक सुगन्धित पुष्प-वाटिका बन जाता है, जिसमें वह स्वच्छन्द विहार करता है। उसके मन-मन्दिरमें सदा-सर्वदा सद्विचारों और सद्भावनाओंकी पावन सरिता प्रवाहित होती है, जिसमें वह आह्लादयुक्त मज्जन करता है। वह निर्भय विचरण करता है। स्पष्टवक्ता, सत्यव्रती होता है—समस्त सद्गुणोंका आगार होता है। दुर्गुण तो उसके पास फटकतक नहीं पाते। वह सर्वत्र लोक-प्रिय होता है। शत्रुको मित्रमें परिणत करनेकी उसमें सामर्थ्य होती है। समाजमें, देशमें, विदेशमें—सर्वत्र उसका सम्मान होता है, जो बड़े-बड़े पूँजीपतियोंको भी दुर्लभ होता है। उसका अन्तःकरण निर्मल, निर्विकार, पवित्र, सात्त्विक-सद्विचारों एवं सद्भावनाओंका एक विशाल मन्दिर होता है, जिसमें विद्यमान महान् संरक्षक भगवान्‌की वह नित्य श्रद्धा-भक्तिपूर्ण पूजा करता है। उसे आन्तरिक सुख-शान्तिका पूर्ण लाभ प्राप्त होता है, जो बड़े-बड़े राजा-महाराजाओंको विश्वके समस्त वैभव एवं ऐश्वर्यके बीच भी नहीं हो पाता।

९. अगर हम अन्तरात्माकी आवाज नहीं सुनते तो सुखको सीमितकर अपनेमें केवल दुःख जोड़ते।

अन्तःकरणका सुख ही मानव-जीवनका यथार्थ सुख है। इसे ही 'आध्यात्मिक सुख'की संज्ञा भी प्राप्त है। अन्तःकरणके सुखके सामने विश्वके अन्य सभी सुख फीके हैं, धूल-समान हैं। मनुष्य भले ही सम्पत्तिहीन हो, उसका झोपड़ीमें अथवा वृक्षोंतले निवास हो, सूखा-रूखा आधा पेट भोजन हो, चट्टानोंपर शय्या हो, किंतु उसका अन्तःकरण यदि सुखी है तो विश्वकी कोई भी हीनता न उसे बाधा पहुँचाती—न उसके सुख-शान्तिको हर ही सकती है। तात्पर्य यह कि अन्तःकरणके संदेश-पालनमें ही यह सामर्थ्य विद्यमान है कि उसके पुण्य-प्रतापसे मनुष्य इसी जन्ममें, इसी भूमिपर अपने लिये स्वर्गका निर्माण कर स्वर्ग-सुखोपभोग प्राप्त कर सकता है। इसी ध्रुव-सत्यको स्व० श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तने इस प्रकार व्यक्त किया है—

खलोंको कहीं भी नहीं स्वर्ग है, भलोंके लिये तो यहीं स्वर्ग है।
सुनो स्वर्ग क्या है ? सदाचार है, मनुष्यत्व ही मुक्तिका द्वार है॥
नहीं स्वर्ग कोई धरा-वर्ग है, जहाँ स्वर्गका भाव है, स्वर्ग है।
कदाचार ही रौरवागार है, मनुष्यत्व ही मुक्तिका द्वार है॥

१०. मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है—भगवत्प्राप्ति। भगवत्प्राप्ति तभी सम्भव है, जब मनुष्यका अन्तःकरण निर्मल-निर्विकार हो। उसमें पवित्र सात्त्विक सद्विचारों एवं

सद्भावनाओंकी सरिता प्रवाहित होती हो और उसका समस्त जीवन परहितके ही पावन यज्ञमें समर्पित हो। अन्तःकरणके संदेशकी, ईश्वर-संदेशकी अवहेलना करनेवाले मलिन, दूषित अन्तःकरणके कुमार्गगामी, दुराचारीको तो यह प्राप्ति सम्भव ही नहीं। यह तो केवल अन्तःकरणद्वारा निर्धारित मार्गका अवलम्बन करनेवाले पुण्यात्माकी ही सामर्थ्य होती है कि वह अपने पुण्यमय सत्कार्योंसे इस चरम लक्ष्यको सम्पादन कर सकता है। यह सामर्थ्य अन्योंमें कहाँ ! ऐसी स्थितिमें यथार्थतः बुद्धिमान् वही है, जो अन्तःकरण-रूपी गुरुके ही आदेशोंका पालन करता है और सन्मार्गपर अचल, अडिग अड़ा रहता है।

दयालु प्रभुने मनुष्यको यथार्थ सुख-शान्ति-प्राप्तिकी इतनी अमूल्य निधि प्रदान की है; किंतु दुर्बुद्धिवश मनुष्य इस अलौकिक निधिका अपमान करता है, उसका त्याग करता है और आडम्बरयुक्त भौतिक सुखोंकी मृगतृष्णामें पड़ता है—क्षणिक इन्द्रियसुखका लोलुप हो, वासनाओंके वशीभूत हो अन्तःकरणकी आवाजको अनसुनी करता है—उसके संदेशकी अवहेलना करता है और सन्मार्ग त्यागकर कुमार्गपर फिसल पड़ता है। यहीं मनुष्यके पतनका प्रारम्भ होता है। फिर तो विरला ही सन्मार्गपर लौटता है। कुमार्गके आकर्षणयुक्त भौतिक सुख, इन्द्रिय-सुखमें वह ऐसा जकड़ जाता है कि फिर उससे मुक्तिलाभ कर ही नहीं पाता। फिर वह पतनकी ओर ही दिनदूने रात चौगुने अग्रसर होता जाता है और अन्तमें पतनके गर्तमें जा डूबता है। उसका समस्त जीवन दुःखमय हो जाता है। वह सर्वत्र अप्रिय हो जाता है और समाज उसे निरादर, घृणा एवं तिरस्कारकी ही दृष्टिसे देखता है। उसका मन मलिन, और अन्तःकरण दूषित, अपवित्र हो जाता है—उसमें अश्लील विचारों—कुविचारों, दुर्भावनाओंकी गंदी नाली सदैव बहती है। उसका अन्तःकरण पैशाचिकताका केन्द्र—नारकीय खंडहरमें परिणत हो जाता है, उसमें पापात्माओंकी प्रेतवाणी गूँजती रहती है और वह इसी जन्ममें, इसी भूमिपर नरककी यातनाएँ भोगता है। वह अपने परिवार एवं समाजके लिये एक अभिशाप सिद्ध होता है।

११. यह हम और आप सभी नित्य ही देखते एवं सुनते हैं कि अन्तःकरणके संदेश-पालनसे ही मनुष्यको जीवनके यथार्थ सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है और उसके उल्लङ्घनसे नारकीय कष्ट भोगने पड़ते हैं। किंतु फिर भी मनुष्य अन्तःकरणके संदेशकी उपेक्षा करनेकी महान् पतनकारी गलती करता ही है और अपने हाथों अपने पैर कुल्हाड़ी चलाता है।

१२. मनुष्य ही अपने भाग्यका निर्माता होता है। अन्तःकरणद्वारा निर्धारित मार्गका अनुसरण कर मनुष्य अपने लिये स्वर्गका निर्माण कर सकता है और उसका त्याग कर नरकका भी निर्माण कर सकता है। अतएव मानवको चेतकर प्रभुप्रदत्त विवेकका सदुपयोग करना चाहिये। अन्तःकरणसे प्राप्त ईश्वरीय संदेशका सम्मान कर, स्वर्ग-सुखोपभोगका आस्वादन कर, जीवनके चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिका सम्पादन कर अपना दुर्लभ मानव-जन्म सफल तथा सार्थक बनाना चाहिये।

## 'पीरौ पट सदा जिय बीच फहरयौ करै'

बोल्यौ करैं नूपुर श्रवन के निकट सदा,
पद-तल लाल मन मेरे बिहरयौ करै।
बाजी करै बंसी-धुनि पूरि रोम-रोम मुख,
मन मुसुकानि मंद मनहि हरयौ करै॥
'हरिचंद' चलनि मुरनि बतरानि चित,
छाई रहै छबि जुग दृगन भरयौ करै।
प्रानहु ते प्यारौ रहै प्यारौ तू सदाई, तेरौ
पीरौ पट सदा जिय बीच फहरयौ करै॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

# तपोबल

( लेखक—श्रीयुत प्र० त्रि० दीपंकर )

'माँ, ओ माँ !' द्वारसे आते-आते उपमन्यु अचानक पुकार उठा।

'क्या है रे ?' माँने उसको अपने अङ्क-पाशमें भरकर वक्षसे लगाते हुए एक ठंढी साँस खींची। अब उपमन्यु अपना-पराया समझने लगा है। यही तो एकमात्र उसका जीवन है, उसका दुलारा, घरका उजियारा—।

माँकी विचार-तन्द्रा टूटी, तो देखा उपमन्यु अब भी बैठा है उसकी गोदमें और एकटक उसके क्लान्त मुखारविन्दको निहारे जा रहा है। माँको अपनी ओर देखते पा वह बोल पड़ा—'माँ! मुझे उतना ही मीठा दूध पिलाओ।' उसके स्वरमें बालहठका सम्मिश्रण था।

अरे हाँ, माँको याद आया—उपमन्यु अभी कुछ देर पहले माँके साथ अपने मामाके घर गया था, जहाँ उसने मामाके लड़केको दूध पीते देखा था। उसे भी थोड़ा दूध मिला था।

'ओह, दूध! कितना स्वादिष्ट!! कितना मीठा !!!' उसने दूधके स्वादको स्पष्ट अनुभव किया और पुनः दूधकी याद आ जानेपर वह माँसे कह बैठा—

'माँ, मुझे दूध चाहिये, ला दो न !'

पर, माँ तो अपनी जीर्ण-शीर्ण कुटियाकी अधगिरी दीवारों, उखड़े खपरैलोंको देखती-देखती कहीं खो-सी गयी थी। वह इस बार भी बालक उपमन्युके कहे शब्दोंपर ध्यान न दे सकी।

'माँ, तुम बोलती क्यों नहीं ? मैं दूध पिऊँगा। मामाके घरमें जैसा पिया है, वैसा ही।'

'बेटा! हम निर्धन हैं। हमारे पास पेट भरनेके लिये अन्न तो है ही नहीं, फिर, भला मैं तुझे दूध कहाँसे पिलाऊँ ? अब तो तू समझदार हो गया है। क्या तू माँकी व्यथा, उसकी निर्धनताको समझ नहीं पाता ?' माँने उपमन्युको समझानेका प्रयत्न किया।

पर, आज तो उपमन्यु बालहठपर उतर आया था। अन्तमें जब माँको बचावका कोई रास्ता मिलता दिखायी न दिया, तब उसे एक युक्ति सूझी। घरमें माँने कुछ अन्न एकत्र किया था दिन काटनेके लिये। सोचा—"चलो, इसीको पीसकर तथा पानीमें घोलकर बालकको दे दूँ। वह 'दूध' समझकर पी लेगा। अपना हठ तो भूल जायगा किसी तरह।"

'अच्छा, बेटा! तू यहीं खेल, मैं अभी तेरे लिये दूध लेकर आयी!' कहते हुए माँ पासकी कोठरीमें चली गयी। थोड़े-से अन्नको पीसा; फिर उसे जलमें घोलकर दो-तीन बार हिलाया, कुछ दुधियापन तैर आया जलपर। उसे आँचलके एक छोरसे छानकर, पीतलके पात्रमें उड़ेल, कोठरीके बाहर आयी। देखा, तो उपमन्यु अन्यमनस्क-सा दीवालपर पीठ टिकाये आँगनके एक कोनेमें स्थित शिवलिङ्गको एकटक देख रहा है।

'माँ! दूध लायी ?'

'हाँ, बेटा! ले, यह रहा तेरा दूध। पी ले इसे।' कहते हुए माँने उस पात्रको उपमन्युके हाथोंमें थमा दिया।

उपमन्युने बड़ी ललकसे माँके लाये 'दूध' को ओठोंसे लगाया। एक घूँट ही पिया कि उसे उस

'दूध' का स्वाद बहुत खराब लगा। मुँह बनाते हुए वह माँसे बोला—

'अरी माँ ! यह तो नकली दूध है। मैं तो असली दूध पिऊँगा। बिल्कुल मामाके घरके दूध-जैसा मीठा और गाढ़ा।' कहते-कहते वह रो पड़ा।

किसी प्रकार माताने उसे फुसलाकर चुप कराया। कहा—'बेटा ! इस दुनियामें है तो सब कुछ—दूध-घी, मोती-माणिक, राज्य आदि। पर, ये सभी वस्तुएँ भाग्यसे ही प्राप्त होती हैं। हमलोग अभागे और निर्धन हैं। अतः हमें असली दूध मिलना असम्भव है। तू यह जो शिवलिङ्ग देख रहा है न ! ये ही भगवान् शिव सर्वसमर्थ हैं। उन्हींकी शरणमें जानेपर समस्त मनःकामनाएँ पूर्ण होती हैं। भोलानाथके प्रसन्न होनेपर दूध तो क्या, क्षीरसागर-तक दे देनेमें वे संकोच नहीं करते।' माँने उपमन्युको सीख दी।

'भोलानाथ प्रसन्न कैसे होते हैं ?' उपमन्युने प्रश्न किया।

'वे तपसे प्रसन्न होते हैं।' माँ बोली।

'तो मैं भी तप करूँगा, माँ ! मैं अपने तपोबलसे सर्वेश्वर महेश्वरका आसन हिला दूँगा। वे कृपामय मुझे क्षीरसागर अवश्य देंगे।'—कहते हुए उपमन्यु माँकी गोदसे एकाएक उठा और घरसे निकल पड़ा। माँ आँगनमें बैठी उपमन्युको जाते देखती रही। किसी अदृश्य शक्तिके प्रभावसे उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका।

× × ×

उपमन्युने हिमालयकी हिम-मण्डित कन्दराओंमें आसन लगाया। घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। उसने भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये अन्न-जलतकका त्याग कर दिया। कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। घरमें उपमन्युकी माँ द्वारपर बैठी अपने हठी बालकके वापस आनेकी बाट जोहती रही। पर, उपमन्यु न आया।

कई वर्ष बाद उसकी तपस्यासे समस्त जगत् संतप्त हो उठा। भगवान्‌ने देवताओंको साथ लेकर मन्दराचल पर्वतपर जाकर भगवान् शंकरसे कहा—'बालक उपमन्युको तपसे निवृत्तकर विश्वको आश्वस्त करना आपके ही वशकी बात है।

× × ×

'यह कठोर तप तुम्हारे लिये नहीं है, वत्स !'—ऐरावतसे उतरते हुए इन्द्रने अपना परिचय दिया।

'आपके आगमनसे यह आश्रम पवित्र हो गया।'—यों कहते हुए उपमन्युने इन्द्रका स्वागत किया। तदनन्तर 'शिव-चरणोंमें स्थान प्राप्त हो'—ऐसी इच्छा व्यक्त की।

'शिवकी प्राप्ति कठिन है। मेरा तीनों लोकोंपर अधिकार है। तुम मेरी शरणमें आ जाओ, मैं तुम्हें समस्त भोग प्रदान करूँगा।' इन्द्रने परीक्षा ली।

'लगता है, तुम इन्द्रके वेषमें कोई दुष्ट दैत्य हो। भला इन्द्र भी कहीं इस प्रकार किसीको शिव-भक्तिसे विरत कर सकते हैं ? अवश्य ही तुम्हारा उद्देश्य मेरी तपस्यामें विघ्न डालना है। तुम शिव-द्रोही हो, मैं तुम्हारे प्राण ले लूँगा। तुम्हारा इतना साहस कि तुम मेरे मुखपर मेरे प्रिय आराध्यकी तौहीन करो ?' कहते-कहते आवेशमें आ उपमन्यु उन छद्मवेशी इन्द्रको मारने दौड़ पड़ा। पर अचानक ठिठक गया।

देखा तो सम्मुख साक्षात् महेश्वर खड़े, मन्द-मन्द मुस्कान बिखेरते उसे शान्त होनेका संकेत कर रहे थे।

'तुमने अपने तपोबलसे मेरी भक्ति प्राप्त कर ली है। मैं प्रसन्न हूँ।' इन्द्ररूपी शिवने उपमन्युको अभय दिया। उपमन्यु उनके चरणोंसे लिपट गया। उसके शब्द हिचकियोंमें डूब गये। कुछ कहते न बना।

'शान्त हो, वत्स! मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।' क्षीरसागर प्रकटकर चन्द्रशेखर शिवने भक्तकी कामना पूरी की। उसे पार्वतीकी पावन गोदमें रखकर कहा—'वत्स! जगज्जननी तुम्हारी अम्बा हैं, मैं पिता हूँ।'

माँ पार्वतीसे उसे योग, ऐश्वर्य और ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति हुई और वह संतुष्ट हो गद्गद कण्ठसे कैलास-पतिकी वन्दनामें लीन हो गया। भगवान् शंकर गिरिजासमेत अन्तर्धान हो गये।

# 'मृत्यु हौवा नहीं'

( लेखक—श्रीविनयकृष्ण रामदासजी )

अँधेरी रातमें चलते हुए एकाएक किसी रस्सीके टुकड़े-पर पैर पड़ जानेसे हम चीखकर दूर भाग जाते हैं। फिर उस रस्सीके पास आनेकी हिम्मत नहीं होती। क्यों? इसलिये कि साँप हमारे लिये हौवा बना हुआ है। दादी-नानीके मुँहसे बचपनमें सुनी घटनाओंके कारण बड़ी उम्रमें भी गाँवके पासके किसी खास वृक्ष या स्थानके पाससे रातमें एकाकी गुजरते हुए हम भयभीत हो उठते हैं। क्यों? इसलिये कि बचपनसे ही भूत-पिशाचका भय मनमें समाया हुआ है। भूत-पिशाच हौवा बना हुआ है। इसी प्रकार साधु-संतोंने भी मृत्युके बादकी यातनाओंको लेकर मृत्युको हौवा बना दिया है—यहाँतक कि मनुष्यको 'मरण' शब्दतक नहीं सुहाता। किंतु मृत्युका विचार हम करें या न करें, वह आये विना न रहेगी। मरण निश्चित है, और बातें भले ही अनिश्चित हों। हम मृत्युका सामना नहीं कर सकते। उससे बचनेके लिये हम हजारों तरकीबें निकालें, तो भी उसका जोर इतना होता है कि अन्तमें वह हमारी गर्दन धर दबायेगी ही। भगवान् गीतामें कहते हैं—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
( २। २७ )

अर्थात् 'जन्मे हुएके लिये मृत्यु और मरे हुएके लिये जन्म अनिवार्य है।'

भगवान् बुद्ध अपने महापरिनिर्वाणके समय रोते हुए अपने शिष्योंसे भी यही कहते हैं—'भिक्षुओ! सभी प्रियोंसे वियोग होता है। जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब नाश होनेवाला है। हाय! वह नाश न हो—यह सम्भव नहीं।'

विनोबाजीका कहना है—'दिनभर काम करके जब हम थक जाते हैं, तब थकान मिटानेके लिये हम सो जाते हैं। निद्रामें इन्द्रियोंको विश्रान्ति मिल जाती है। स्वप्न न आये तो मनको भी विश्रान्ति मिल जाती है। शरीरको तो मिलती ही है। लेकिन प्राण बेचारा सतत चौबीसों घंटे काम करता रहता है, इसलिये उसकी थकान बनी रहती है, जो मृत्युसे ही मिटती है। अतएव मृत्यु प्राणको आराम देनेकी एक योजना है।'

'जब हमारे निकटतम नातेदार, मित्र, विशेषज्ञ—कोई भी हमें दुःखोंसे नहीं बचा पाते, तब मृत्यु ही हमें उनसे छुटकारा दिलाती है। अतः मृत्यु प्राणीको दुःख और वेदनासे छुड़ाती है।'

इस संदर्भमें एक बात और समझनेकी है। मान लें, किसी मित्रने हमारे पास कुछ रुपये रखनेके लिये दिये हों और उन रुपयोंको हम लोभवश खर्च कर चुके हों तथा उन्हें वापस करनेका कोई साधन हमारे पास न हो, तो उस मित्रसे निश्चय ही हमें भय हो जायगा। उससे हम हर समय कतराते रहेंगे। वह मित्र हमारे लिये हौवा बन जायगा। इसी प्रकार पैदा होनेके समय जैसे निर्विकाररूपमें हम यहाँ आये थे, यहाँसे जानेके समय भी हमारी तैयारी वैसी ही निर्विकाररूपमें यदि हो तो फिर मृत्यु हमारे लिये हौवा कभी हो नहीं सकती। फिर तो हम भी सरे बाजारमें कबीरकी नाईं सीना तानकर कह सकेंगे—

'जस की तस धरि दीनी चदरिया।'

# नरसिंहपुराण—एक संक्षिप्त परिचय

( लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

## १—नरसिंहपुराणकी रमणीयता

भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेवद्वारा रचित नृसिंहोपासनापरक नरसिंहपुराण ग्रन्थ बड़ा ही मनोरम है। श्रीरामचरितमानस*की ही तरह माघ मासमें सूर्यके मकरस्थ होनेपर तीर्थराज प्रयागमें ही श्रीभरद्वाजमुनिने इसे सूतजीसे सुननेकी इच्छा व्यक्त की और मार्कण्डेय-सहस्रानीक-संवाद†के रूपमें सूतजीने उन्हें इसे श्रवण कराया। यद्यपि यह आकार-प्रकारमें बहुत छोटा है और कुछ एकको छोड़ इसमें छोटे-छोटे छाछठ तथा किन्हीं-किन्हीं प्रतियोंमें [सड़सठ या अड़सठ] अध्याय तथा कुल ३५३० श्लोकमात्र हैं—साथ ही इसकी गणना भी उपपुराणोंमें‡ है, तथापि यह सभी प्रकारसे अत्यन्त आकर्षक, सुन्दर धार्मिक सदाचारपूर्ण सदुपदेशोंसे सुसज्जित तथा भगवद्भक्ति एवं ज्ञान-विज्ञानादिसे ओतप्रोत है। इसमें भगवान् विष्णुके दशावतारकी कथाएँ विस्तारसे कही गयी हैं। उनमें भी भगवान् रामकी या रामायणके सातों काण्डोंकी कथा अलग-अलग सात बहुत बड़े-बड़े अध्यायोंमें कही गयी है। इसके अतिरिक्त सदाचार—सज्जनोंके आचार-व्यवहारपर भी, जिसपर यह सारा विश्व टिका रहता है और जिसके नष्ट होते ही वह नष्ट होने लगता है—जैसा कि आज भारतमें सर्वत्र ही, विशेषकर बंगाल आदिमें दीखने लगा है, पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। साथ ही वर्णधर्म, आश्रमधर्म, तीर्थाटन, योगसाधना आदिपर स्थान-स्थानपर आवश्यक निर्देश हैं। भक्तिवर्द्धक मनोरम

---

* स्पष्ट है कि नानापुराणनिगमागमसम्मत मानसके रचयिता गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने मानसके मुखबन्ध 'भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद'की प्रेरणा इसी पुराण-ग्रन्थसे प्राप्त की। वे पुराणोंके अनन्य उपासक तो थे ही—केवल एक रामचरितमानसमें ही उन्होंने 'पुराण' शब्दका ८० बार प्रयोग किया है। ( देखिये श्रीसूर्यकान्त तथा बद्रीदासजी अग्रवालके 'मानसशब्दकोश' तथा 'मानसशब्द-सागर'। ) इसी प्रकार उनके शेष अन्य चौदह ग्रन्थोंमें भी यह शब्द इसी प्रकार सादर बहुशः प्रयुक्त है।

† यह सहस्रानीक पाण्डववंशी राजा ( शतानीकका पुत्र ) कहा गया है। देखिये भागवत ९। २२। ३९ तथा कथा-सरित्सागर इत्यादि। पर अन्य किसी भी पुराण या ब्राह्मण-ग्रन्थमें इसका नाम नहीं आता। विष्णुपुराण आदिमें सर्वत्र ही शतानीकके बाद अश्वमेधदत्त नाम आता है और कहीं-कहीं तो अश्वमेधदत्त भी नहीं आता। सीधे अधिसीमकृष्ण नाम ही आ जाता है—

"But the genealogy assigned to Adhisima-krṣṇa indicates a more definite date; for of his immediate forbears—Aśwamedhadutta, Śatānīka, Janamejaya, Parikṣita,—all but the first, his father Aśwamedhadutta, are no doubt to be identified with the kings of the same names who appear in the Brāhmaṇas." F. E. Pargiter—in ( 1 ) The Purāṇa text of the Dynastics of the Kali age, ( 2 ) Earliest Indian traditional History, ( 3 ) Ancient Indian Historical Traditions, ( 4 ) Eng. Trans. of Mārkaṇḍeya-Purāṇa, ( 5 ) E. J. Bapson, in Camb. Hist. of India, Vol. I, Chap. XIII, p. 269 etc. )

अतः जिस प्रकार ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें 'सप्तार्चि' के बदले अग्निदेवका विशेष आदरसूचक नाम 'शतर्चिष'का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार अन्य लोग इस सहस्रानीकको शतानीकका ही आदरसूचक विशेषण या नामान्तर मानते हैं। देखिये, वही सब उपर्युक्त सामग्री। नरसिंहपुराण अ० ३२ में भी इसे केवल पाण्डववंशी राजा ही बतलाया है। अन्य लोग इसमें कल्पभेदकी कल्पना करते हैं।

‡ १८ उपपुराणोंके नामके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है। 'कल्याण'के संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क, पृ० ७ पर महापुराण, अतिपुराण और उपपुराण आदिके भेदसे ७२ पुराणोंके नाम निर्दिष्ट हैं। उसके अनुसार १८ उपपुराण ये हैं—भागवत, माहेश्वर, ब्रह्माण्ड, आदित्य, पराशर, सौर, नन्दिकेश्वर, साम्ब, कालिका, वारुण, औशनस, मानव, कापिल, दुर्वासस्, शिवधर्म, बृहन्नारदीय, नरसिंह तथा सनत्कुमार। मतान्तरोंकी जानकारीके लिये देखें—आनन्दरामायण ९ ( २ ) ८। ५२—६०, बृहद्धर्मपुराण—पृ० १६५, कूर्मपुराण १। १६—२१, मत्स्यपुराण ५३। ६०—६४, याज्ञ० वीरमि० टीका पृ०—९ इत्यादि। अलबरूनी ( Sachu's Alb. Indica, P. 130—31 ) नरसिंहपुराणका अष्टादश पुराणोंमें ५वीं संख्यापर उल्लेख करता है। १३१ पृष्ठपरके दूसरे क्रममें इसका नाम नहीं है। ध्यान देनेसे लगता है कि पृष्ठ १३० की समूची नामावली ही उपपुराणोंकी है, पुराण या महापुराणोंकी नहीं।

हृदयहारी श्लोकोंकी छटा तो देखते ही बनती है। फिर ८वें अध्यायकी यमगीता, ९वें अध्यायका यमाष्टक, ११ ( अशुद्ध प्रतिमें १२ ) वें अध्यायकी मार्कण्डेयकृत विष्णुस्तुति, २५वें अध्यायका गणपतिस्तोत्र, ४०वें अध्यायका विष्णु-अष्टोत्तरशतनाम, १९वें अध्यायका सूर्याष्टोत्तरशतनाम* तथा अन्य भी कई स्तुतियाँ बड़ी सुन्दर हैं। इसी प्रकार १२वें अध्यायका यम-यमी-संवाद, ६३वें अध्यायका पुरंदरोपाख्यान और ६४वें अध्यायका पुण्डरीकोपाख्यान आदिकी कथाएँ बड़ी ही मनोरम और शिक्षाप्रद हैं। पुण्डरीकोपाख्यान तो प्रत्येक कल्याणेप्सुके लिये निरन्तर मननकी वस्तु है तथा इसमें ज्ञान-विज्ञान-भक्ति-सहित कर्तव्यतानिर्णयपर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

काव्यकलाकी दृष्टिसे भी नरसिंहपुराणकी रचना बड़ी उच्चकोटिकी है। प्रत्येक अध्यायके अन्तमें भिन्नवृत्तके पद्य दिये गये हैं। कोश तथा व्याकरणकी दृष्टिसे भी इसके शब्द पर्याप्त महत्त्वके हैं। मोनियर विलियम्स-जैसे शब्दशास्त्रीने इस ग्रन्थका शब्दचयनकी दृष्टिसे बड़ा आदर किया और भूमिकाके अन्तमें पृष्ठ ३३पर इसका नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके अन्तर्गत रखा है। इसी प्रकार अन्यान्य पुराणोंकी तरह इसमें भौगोलिक वर्णन, काश्यपीय प्रजासर्ग तथा सूर्य-चन्द्रादिसे उत्पन्न राजवंशोंका वर्णन भी सुन्दर है। इसके अतिरिक्त सामान्यनीति, व्यावहारिकनीति, राजनीति, धर्मनीति आदिपर भी इसमें न्यूनाधिक सामग्री प्राप्त है।

## २—रचना भगवान् व्यासकी ही

बहुत-से पाश्चात्त्य तथा भारतीय विद्वानोंका मत है कि महापुराण तो भगवान् व्यासद्वारा रचित हैं, किंतु उपपुराण अन्यान्य व्यक्तियोंद्वारा निर्मित होते रहे हैं†। कुछ विद्वानोंके अनुसार किसी सह्यपर्वतके अञ्चलमें स्थित सह्यामलक ग्राम या नृसिंहक्षेत्रमें इस नरसिंहपुराणकी रचना हुई होगी। वे लोग इसी प्रकार अग्निपुराणको गयामें, पद्मपुराणको अजमेर ( राजस्थान ) में, वाराहपुराणको मथुराके पंडों-द्वारा, वामनपुराणको कुरुक्षेत्रमें, कालिकापुराणको कामरूप कामाख्यामें, कूर्मपुराणको काशीके पंडोंद्वारा तथा मत्स्यपुराणको नर्मदातटवर्ती ब्राह्मणोंद्वारा लिखा गया मानते हैं‡। इसी प्रकार इनके अनुसार स्कन्दपुराणके विभिन्न प्रभास, अवन्ती, काशी, केदार आदि खण्ड, तत्तत्क्षेत्रवासी पंडों आदिद्वारा निर्मित हुए। किमधिकं, 'व्यास' शब्द भी उन पंडोंका ही बोधक हो सकता है। अन्यथा इतना बड़ा विशाल साहित्य कोई एक व्यक्ति कैसे लिख सकता है। किंतु ये सब तर्क थोथे हैं। भारतमें एक नहीं, लोलिम्बराज-जैसे अनेक व्यक्ति घटिकाशतक—एक घड़ीमें परम श्रेष्ठ सौ श्लोकोंकी रचना करनेवाले होते ही रहे हैं। महाभारत-रचनाके समय गणेशद्वारा महाभारत-लेखनकी बात सर्वप्रसिद्ध है। फिर उपपुराणका नाम तो बारंबार पुराणोंमें ही आया है और उनके व्यासद्वारा रचे जानेकी बात भी वहीं निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त रचना-शैली तथा कहीं-कहीं लगातार अध्याय-के-अध्याय भी परस्पर सर्वथा मिलते जाते हैं। उदाहरणार्थ नरसिंह तथा विष्णुपुराणके प्रारम्भके पाँच-छः अध्याय प्रायः सर्वथा एक-दूसरेसे मिलते हैं। इसी प्रकार नरसिंहपुराणके ध्रुवचरित्रके सभी श्लोक स्कन्दपुराणके काशीखण्डके ध्रुवचरित्रसे सर्वथा मिल जाते हैं। इसी प्रकार इसके अन्य भी अनेक स्थल ऐसे हैं, जो अन्यत्र दृष्टिगोचर होते हैं। इसके मङ्गलाचरणके श्लोकको भी देखा जाय, जो इस प्रकार है—

पान्तु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः ॥

देखिये, इसकी रचना-शैली नारदपुराणके उत्तरार्द्धके मङ्गलाचरणसे कितने अंशोंमें मिलती है, जो इस प्रकार है—

* सूर्याष्टोत्तरशतनाम—महाभारत वनपर्व, ३। १५–२७, ब्रह्मपुराण ३३। ३३–४५, स्कन्दपुराण काशी० ४४। १–१३, कुमारिकखं० अ० ३५ तथा हरिवंशादि अनेक अन्य स्थलोंमें भी प्राप्त हैं। कहीं तो ये ही श्लोक, कुछ भिन्न नामवाले भी।

† देखिये 'सिद्धान्त' वर्ष १६ में वासुदेवशरण अग्रवालका लेख तथा "History and Culture of the Indian people".

‡ It seems certain that these Purāṇas were moulded into their present form at various centres of religious activity.

( A. M. Jackson in the centenary volume of the Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society, 1905, P. 73. Camb. Hist. Vol, I. Chapt. XIII. "The Purāṇas" by E. J. Rapson, Page-268 )

इस विषयपर अधिक विस्तृत विवरणके लिये 'कल्याण' वर्ष ४४। २, पृ० ७२३-२४ पर हमारा 'अग्निपुराण तथा पाश्चात्त्य विद्वान्' शीर्षक लेख तथा भंडारकरके १९४० से ५० तकके ऐनाल्स ( Annals ) देखिये।

पान्तु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः ।
त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः ॥
(१ । १)

सुस्पष्ट है कि दोनों रचनाएँ एक ही व्यक्ति ( भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास ) की हैं । इसके अतिरिक्त मुख्य मङ्गलका श्लोक 'नारायणं नमस्कृत्य' आदि केवल पुराणोंमें ही प्राप्त होता है, जो यहाँ भी है । फिर कैसे कहा जाय कि यह रचना किसी अन्यकी और विभिन्न स्थलोंपर हुई है ।

## ३—शब्दसौष्ठव

उपर्युक्त श्लोक शब्दसौष्ठवकी दृष्टिसे भी कम महत्त्वका नहीं है। इसके अतिरिक्त 'स्नायन्ति' ( ६ । २६ ), जो 'ष्णै शोभायाम्' का रूप है; उर्वशी-जैसी सुन्दरीके परम सौन्दर्यके वर्णनकी दृष्टिसे है । ऐसेही 'वृषाकपि' ( ३९ । १३ ), 'भ्रूण' ( ब्राह्मण ( ४९ । २६ तथा 'कर्पट' ( कपड़ा ) आदि अनेक शब्द जो विशेष अर्थ रखते हैं, सामान्य अर्थमें प्रयोग करनेसे रस नहीं आता । इसी प्रकार उपर्युक्त १ । ३ श्लोकका लाङ्गल—( हल ) शब्द लाङ्गल्का भ्रमोत्पादक है । इसी प्रकार इसमें छन्द, अलंकार, अर्थगाम्भीर्य तथा व्याकरणकी दृष्टिसे विचार करनेपर बहुत मसाला प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ 'ष्णै' धातुका ही 'स्नायन्ति' रूप होता है, 'स्ना'का नहीं; पर अर्थमें लोगोंको स्नानका भ्रम होना स्वाभाविक है ।

## ४—तीर्थ तथा भौगोलिक स्थलोंकी खोज

### ( क ) सह्य पर्वत तथा सप्तकुलाचल

नरसिंहपुराणमें बार-बार तीर्थों तथा तीर्थयात्राके लिये उपदेशकी बातें आती हैं । पर अब ये तीर्थ कहाँ और कौन हैं, यह एक समस्या है । अब इन पाश्चात्य विद्वानोंके इस श्रमकी ओर जरा ध्यान दीजिये । इनमेंसे बहुतसे लोग कन्जर्वेटर, सीमाविवादके कमीशनके प्रमुख या सेनाके मुख्य अधिकारी होते थे । अतः नगर, वन-पर्वत तथा तीर्थोंके बीचमें रहकर भौगोलिक तथा स्थल-निर्णय ( Topographical survey ) आदिका कार्य ये करते थे । इसके अतिरिक्त इनमें अध्ययन तथा शोधकी लगन भी प्रचुरमात्रामें रही । इनमें कनिंघम तथा पार्जिटरका शोधश्रम तो बहुत ही प्रशंसनीय है । अब नरसिंहपुराणके सह्यामलक ग्राम या नृसिंहक्षेत्र तथा सह्य पर्वतको ही लीजिये, जो इनके अनुसार उसका रचनास्थल हो सकता है । कहते हैं कि नरसिंहपुराणमें ७ । ४१;[1] ७ । ४६;[2] २८ । ११;[3] ६५ । ९ तथा अध्याय ६६ श्लोक १३ से श्लोक ४५ तक इत्यादि स्थलोंपर तथा अन्यत्र भी सप्तकुलाचल-पर्वतोंके साथ इसका बार-बार उल्लेख प्राप्त होता है । यद्यपि 'कल्याण'के तीर्थाङ्क, पृष्ठ २४४ से २७० तकको देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि गोदावरीके उद्गमके पास दक्षिणका खण्ड, कुलाबा जिलेका रायगढ़ दुर्गवाला पर्वत, भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्गवाला पर्वत तथा कोल्हापुरके पासका पर्वत—यह सब सह्याद्रिके अन्तर्गत हैं । 'सह्याद्रिखण्ड' नामक स्कन्दपुराणके प्रसिद्ध ग्रन्थ तथा अन्यान्य पुराणोंसे भी यही सिद्ध होता है । इस प्रकार प्रायः पश्चिमीघाटका पहाड़ या मलाबारका उत्तरी भाग सह्याचल-खण्डमें है । पर जब प्रायः अन्य सभी पुराणोंमें भी इस प्रदेशको सारी पृथ्वीमें उत्तम बतलाया गया है—

सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥

( ब्रह्मपुराण—२७ । ४३, मार्कण्डेयपुराण ५७ । ३४, वायुपुराण ४५ । ११२, मत्स्य ११४ । ३७ सांख्यकारिका० माठरभाष्य पृ० ११ आदि । )

अनेकानेक स्थलोंपर जब यह श्लोक प्राप्त होता है और शिरोल तथा नरसिंह या नृसिंहवाड़ी क्षेत्र भी यहीं स्थित है, तब यह कैसे कहा जाय कि यह पुराण यहीं रचा गया ? तब तो फिर अठारहों पुराण तथा उपपुराणोंको भी यहीं रचा गया मानना चाहिये । फिर तो यह भी कहा जा सकता है कि नरसिंहपुराणके प्रणेता भी एक नृसिंह सरस्वती नामके साधु थे, जिनके नामपर यह नृसिंहवाड़ी क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ । इसी प्रकार ये वास्तविक महेन्द्रको,—जो मलयगिरि ( जो सह्यके दक्षिणमें स्थित है ) के दक्षिण होना चाहिये । और जिसपरसे हनुमान्‌जीने लङ्काके लिये छलाँग लगायी थी और जो उनके वेगसे प्रायः पृथ्वीमें समा-सा गया था, जैसा कि रामायणसे स्पष्ट है,—उसे कहीं उड़ीसाके गंजम जिलेके पास जो इसी नामका दूसरा एक पर्वत है, बतलानेकी चेष्टा करते हैं[4] । पर ये सब बातें

१. तुङ्गभद्रेति विख्याता या नदी सह्यपर्वते । इत्यादि

२. सह्यपादोद्भवायास्तु भद्रायास्तटमुत्तमम् ।

३. माहेन्द्रो मलयः सह्यः ... भारते कुलपर्वताः ॥

4. Pargiter in his 'English translation of the Mārkandeya Purāṇa' has tried to identify

भागवतादिके विरुद्ध हैं। तीर्थाङ्क ( कल्याण ) पृ० ६० पर तो स्पष्ट लिखा है कि बदरीनारायणके समीप केशवप्रयागमें सरस्वती तथा अलकनंदाके संगमस्थलपर 'शम्याप्राश' नामक स्थान है। इसे आजकल 'माणाग्राम' कहते हैं। यहीं एक गुफा है, जिसे व्यासगुफा कहते हैं। इसीमें बैठकर भगवान् व्यासने अठारहों पुराण लिखे थे। इसके समीप ही गणेशगुफा है। वहाँ गणेशजी रहते थे। महाभारत-लेखनके समय वे व्यासजीका सहयोग करते थे, यह बात महाभारतमें ही लिखी है।,' भागवत १। ४ में भी शम्याप्राशमें भागवतादि पुराणोंके लिखे जानेकी बात आयी है। अतः इसे भी वहीं निर्मित हुआ मानना चाहिये। इसी प्रकार नरसिंहपुराणमें सात प्रधान कुलपर्वतोंके अतिरिक्त सात पवित्र नदियों तथा पुरियोंका भी उल्लेख है।

## ( ख ) द्वादशारण्य

भारतके द्वादशारण्य परम प्रसिद्ध हैं। नरसिंहपुराणके

the various geographical names occurring in the Purāṇas. He thinks that the ninth Dwipa surrounded by the sea should be understood to mean India. Then he goes on to identify the seven mountain ranges in it. The mountain Mahendra is identified with the portion of the Eastern Ghats between the Godawari and the Mahanadi rivers and the hills in the south of Berar. Malaya is the southern portion of the Western Ghats. The Sahya may be identified with the northen portion of Western Ghats. The southern portion of the Eastern Ghats and the Mysore hills may be associated with the Śuktimat Range. By the term Vindhya, the whole of the modern Vindhyas ( see, Imperial Gazzeteer, Vol, I-IV ) is not suggested, but only the portion in East Bhopal. Pāriyātra, also called Pāripātra, is identified with the western portion of the modern Vindhyas in the west of Bhopal. This might also include the Arawali hills in Rajasthan."

( PP. 284—305.. 'A study of the Agni-Purāṇa', S. D. Gyani, p. 167 )

दूसरोंके अनुसार यह विवरण इस प्रकार है—महेन्द्र ( उड़ीसामें गंजमके पास ), मलय ( मैसूरमें ), सह्य ( पश्चिमीघाट ), शुक्तिमान् ( हिमालय ), विन्ध्य ( विन्ध्याचल ) और पारियात्र ( अरावली पहाड़ी ) ! वही पुस्तक पृष्ठ १५५ ।

प्रारम्भमें ही १। ३–७ श्लोकोंमें इन द्वादश अरण्योंकी गणना इस प्रकार की गयी है—१–नैमिषारण्य, २–अर्बुदारण्य ( आबूपर्वत ), ३–विन्ध्यारण्य, ४–दण्डकारण्य, ५–महेन्द्रारण्य ( वर्णन पहले आ चुका है ), ६–श्रीशैल ( तिरुमलै ), ७–कुरुजाङ्गल ( पूर्वी पंजाबके अन्तर्गत कुरुक्षेत्र-करनाल ), ८–हिमारण्य ( हिमालय ), ९–पम्पारण्य ( हाम्पी ), १०–धर्मारण्य ( सिद्धपुर—गुजरात ), ११–कौमारारण्य और १२–पुष्करारण्य ( राजस्थान )। तीर्थाङ्क, पृ० ५३१ से यदि उत्पलारण्य ( बिठूर ) को कौमारारण्य की जगह रखा जाय तो पुनरुक्तिदोष मिट जाय; क्योंकि श्रीशैलको ही कौमारपर्वत भी माना जाता है। अथवा क्रौञ्चपर्वतको भी कुमारगिरि कहा जा सकता है।

## ( ग ) अड़सठ तीर्थ

द्वादशारण्यके ही समान इस ग्रन्थमें पञ्चसरोवर तथा अनेकानेक ऋषि-आश्रमोंका भी वर्णन हुआ है। विस्तारभयसे उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। ग्रन्थके अन्तमें ६५वें अध्यायमें ६८ मुख्य तीर्थोंका एक बार पुनः परिगणन किया गया है। इसी प्रकारके ६८ तीर्थोंका वर्णन अनेकानेक ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंपर प्राप्त होता है। अन्य धर्मोंमें भी इसकी चर्चा आती है। गणेशसहस्रनामस्तोत्र, श्लोक १६२ में भी आया है—'अष्टषष्टिमहातीर्थक्षेत्रभैरववन्दितः।' स्कन्द-पुराण, काशीखण्डके ६९वें अध्यायमें भी ६८ तीर्थोंका विस्तारसे वर्णन आया है। अग्निपुराणके ३०५वें अध्यायमें भी इन्हीं तीर्थोंका वर्णन है। पर वहाँ तीर्थोंकी संख्या ५५ के आसपास ही आती है और कुब्जाम्र, शालग्राम, रैवतक आदि स्थानोंकी वहाँ पुनरुक्ति भी हुई है। पर नाम प्रायः वे ही हैं। ये दोनों पुराण यहाँ एक साथ ही प्रकाशित हो रहे हैं। अतः पाठकोंकी जानकारीके लिये इन तीर्थोंकी अकारादि क्रमसे नामसूची तथा आधुनिक नामोंका भी यथाज्ञान निर्देश करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। कहना न होगा कि ये श्लोक थोड़े-बहुत अन्तरसे श्रीविष्णुधर्मोत्तर महापुराण, खण्ड ३, अध्याय १२५ में भी इसी प्रकार प्राप्त होते हैं। पर विष्णुधर्म तथा अग्निपुराणके श्लोक सर्वथा एक हैं और यदि दोनोंका पाठ ठीकसे मिलाया जाता है, जो शुद्धिके लिये परमावश्यक है, तो यह तीर्थ-संख्या बिल्कुल अड़सठ ही होती है। इतना ही नहीं, २१, ५१ या ६८ गणपतिक्षेत्र, शिवक्षेत्र शक्तिक्षेत्र तथा विष्णुस्थान भी

हैं । साथ ही अष्टोत्तरशत शक्ति, शिवस्थान भी हैं । इनमेंसे कुछ तीर्थाङ्क ५८६, ५१३ आदि पृष्ठोंपर भी दिये गये हैं। पर स्कन्द०, रेवाखण्डसे मिलानेपर शक्तिस्थानके नाम और शुद्धतर हो जाते हैं ।

| नरसिंहपुराण अ० ६५ में तीर्थनाम-क्रम-संख्या वर्तमान नाम | अग्निपुराण अ० ३०५ तथा श्रीविष्णुधर्म ३-१२५की नामावली एवं नाम-सं० | तीर्थका वर्तमान नाम तथा स्थलनिर्देश |
|---|---|---|
| अयोध्या—५० | अश्वतीर्थ (वि.) | कन्नौजके पास गङ्गातटपर स्थित (महा०, वन० ९५ । ३ महाभारत नामानुक्रमकोश गीताप्रेस ) |
| ऋषभ—७ | उत्पलावर्त—५१ | बिठूर |
| | | भुवनेश्वर ( उड़ीसा ) |
| | एकाम्र—११ | |
| औण्ड्र—५४ | औण्ड्र—६० | उड़ीसा |
| कसेरट—२९ | | |
| काशी—२४ | काशी—३७ | वाराणसी |
| | काश्मीर—१० | |
| | किष्किन्धा—३५ | हास्पेट-विजयनगरके पास |
| कुब्जाम्रक—१७,३६ | कुब्जाम्र—१३ | ऋषिकेश |
| कुरुक्षेत्र—४८ | कुरुक्षेत्र—१९ | करनाल जिले ( हरियाणा ) में |
| केदार—२३ | | |
| कोकामुख—१ | कोकामुख—(वि.) | वाराहक्षेत्र |
| | गङ्गाद्वार—१४ | हरिद्वार |
| कपिलद्वीप—( ३ ) | गङ्गा-सागर-संगम—२३ | |
| गन्धमादन ( १८ ) | गया—२ | |
| | गोवर्धन—१६ | |
| चित्रकूट—१२ | चित्रकूट—४ | |
| | जम्बूमार्ग— | केशवरायपाटन (तीर्थाङ्क पृ० २८४ ) |
| | जयन्ती—७ | सरस्वतीतटपर |
| तृणविन्दुवन २७ | दण्डक—५० | |
| देविका—३४ | देविकातीर—२४ | पंजाबकी एक नदी |
| द्वारका—( ८ ) | द्वारका—४२ | |
| दशपुर—३५ ( मंदसौर ) ३४ | | |
| | नन्दा—५६ | |
| | नर्मदा—५२ | |
| | नेपाल—४० | |
| नैमिषारण्य—( १३ ) | नैमिषारण्य (वि.) | बालमऊ ( सीतापुर ) से १६ मील |
| पाड्यसह्य | पिण्डारक—१७ | द्वारकाके पास |
| | पुरुषवट—४५ | |
| पुष्कर ( २५ ) | पुष्करारण्य—१ | अजमेरमें |
| | पूर्वसागर—२२ | |

| | | |
|---|---|---|
| प्रभास ( ४ ) | प्रभास–५ | काठियावाड़ |
| | प्रयाग–२५ | |
| | मगधवन | |
| मथुरा–२२ | मथुरा–१२ | |
| मन्दर–२ | मन्दर–४२ | भागलपुरका मदारगिरि |
| | महेन्द्र–५२ | |
| महेन्द्र–६ | यमुना–२० | |
| माहिष्मती– ( महेश्वर ) | रैवतक–३६,५२ | गिरनारपर्वत |
| | लोहदण्ड–३ | |
| | लोकाकुल-लोहार्गल–४१ | लोहागरजी ( राजस्थान ) |
| वल्लीवट | वट-वट–७२ | |
| | वर्धमान–९ | बर्दवान ( बङ्गाल ) |
| वितस्ता–२७ | वितस्ता | झेलमनदी ( पंजाब ) |
| | विन्ध्या–५९ | |
| विमल–६५ | विमल–४६ | उड़ीसामें एक तीर्थ |
| | विरजा–३८ | जगन्नाथपुरी |
| | विशालयूप–३९ | |
| वृन्दावन–२१ | वृन्दावन–६ | |
| | शंखोद्धार–१८ | राजस्थानके झालवाड़ जिलेमें झालरापटन-के दक्षिण चन्द्रभागानदीके तटपर |
| शालग्राम–१५ | शालग्राम–१५ | हरिहरक्षेत्र |
| | शोण–२१ | |
| सह्य–( २५ ) | सह्याद्रि–५६ | |
| सैन्धवारण्य–( ३–क,देखिये ) | सैन्धवारण्य–४७ | |
| | हस्तिनापुर–८ | दिल्लीसे ५० मील पूर्वोत्तर |
| | हिमाचल ( वि. ) | |

विष्णुधर्म तथा अग्निपुराणके नाम मिलानेसे शुद्ध हो गये हैं। पर नरसिंहपुराणके नामोंमें संशोधनकी अभी आवश्यकता है, अतः उसमें कुछ नाम और क्रम पते आदि नहीं दिये गये हैं।

## ५–सदाचारकी महत्ता

विनय, शील तथा सदाचारके बिना तप-तीर्थादि व्यर्थ हैं, यह नरसिंहपुराणके कश्यपाख्यान* तथा अन्य सभी पुराणोंके तीर्थोपोद्घातसे सुस्पष्ट है। अन्यथा अर्थ-काम-परायण व्यक्ति स्वार्थके लिये पाप तथा हत्यापर भी उतारू हो जाता है। इसलिये कश्यपाख्यानमें माता-पिता, गुरु, ईश्वर-की सेवा तथा सदाचारको तप-तीर्थसे भी श्रेष्ठ बतलाया है। इन्हीं विनय-शीलादिके अभावमें लोग अविनयी और असदाचारी तथा स्वार्थान्ध होकर अपने सम्बन्धियों, बन्धु-बान्धवों तथा निरीह जीवोंकी हत्यातक कर डालते हैं, जैसा कि पूर्व बंगालमें आज हो रहा है। इतिहास इसका सदासे साक्षी रहा है। गुलाम, खिलजी तथा मुगलवंशके सभी राजाओंने अपने पिता, चाचा, ज्येष्ठ भ्राता आदिकी हत्याएँ कर रक्तरञ्जित राज्यका ही भोग किया। पाश्चात्योंका तो कहना ही क्या? 'Truth' 19-2-71 के शब्दोंमें—

"In Mary Tudor's five years reign 300 Protestants were burnt at the stake. When her sister, Elizabeth, a Protestant, succeeded her, 400 Catholics were burnt at the stake. In France

* यह कथा पद्मपुराण, सृष्टिखण्डमें भी है।

Huguenots were massacred in masses and in the night of the massacre of St. Barthalolomew was an awful sight. In Spain the Jesuits persecuted and slaughtered men in untold numbers. Jews were expelled from many parts of Europe and specially from Spain and other places. In Russia Peter the Great spat on the face of the English ambassador, because the Tzar was annoyed. Tzar Paul was a writer and a cultured man, yet he tore off one leg and the arm of a peasant, who fired a musket near the palace to kill a jackdaw. Tuzukh-e-Firozshahi† relates the exploits of Firoz Tughlak in high delight, how the blood of six lac Kafirs coloured the water of Chilka lake and all the young women were seized and carried off with the other booty, leaving the other women in chains. Similarly 50,000 women and children who took refuge in the Somnath temple were killed by Mahmood of Ghazni. Aśoka, who had become Dharmaśoka from Chaṇḍaśoka still put to death a Brahman who refused to accept the Buddhist faith.

"And now of course Hitler's six million jews, Stalin's millions of Kukluks and thousands of peoples of high rank, Mao Tse Tung's 15 million Chinese. This is History. And at the present moment in brutality and blood-thirstiness Naxals are second to none.

"But why then our past history is cleaner? Because of the influence of the unique Hindu Śastras. Due to the same even Vincent Smith has testified that Sivaji's troops were paragons of virtue and of unique character". ( pages —659—60 )

सारांश यह है कि मेरी ट्यूडरके राज्यकालमें ३०० प्रॉटेस्टैंट ईसाइयोंको बाँधकर जलाया गया और उसकी बहन एलिजाबेथके शासनमें ४०० कैथलिक ईसाइयोंको··· तुजुकुत फिरोजशाहीसे फिरोजशाह तुगलकद्वारा छः लाख काफिर—अन्यधर्मियोंकी हत्यासे चिल्का झीलके रक्तरञ्जित होनेकी बात ज्ञात होती है। इसी प्रकार महमूद गजनीद्वारा सोमनाथ मन्दिरमें शरण लिये हुए ५० हजार स्त्री-बच्चोंके मारे जानेकी बात इतिहासमें मिलती है। इसी तरह हिटलरके द्वारा ६० हजार यहूदी, स्टैलिनके द्वारा १० हजार कुक्लुक और माओद्वारा डेढ़ लाख चीनी···। यह इतिहास है और अब नक्सलपंथी बन्धु भी अपनी रक्तपिपासा तथा क्रूरतामें किसीसे तनिक भी पीछे नहीं हैं और आजके बांगला देशपर पाकिस्तानके अत्याचारका तो वर्णन ही शक्य नहीं।

प्रश्न होता है कि तब फिर हमारा पूर्वका इतिहास शुद्ध तथा स्वच्छतर कैसे रहा ? भरत-राम आदिके त्याग-सौहार्दकी बात ( द्रष्टव्य, नरसिंहपुराण ४७ । ५२ ) कैसे रही ? उत्तर है—हमारे अद्भुत शास्त्रोंके सदाचारसम्बन्धी उपदेशोंके सत्प्रभावके कारण। इन्हीं शास्त्रों तथा उनकी चर्चाके कारण ही विन्सेंट स्मिथो भी स्वीकार करना पड़ा है कि शिवाजीकी सेना ( मुगलोंकी अपेक्षा ) धर्मपालन तथा सदाचारके रक्षणमें सर्वथा श्रेष्ठ एवं अद्भुत रही। ( जब कि मुगलसेना ठीक तद्विपरीत थी। )* अतः सदाचारपर नरसिंह-

† इसके अतिरिक्त तारिखे फ़िरोज़शाही, फतुहाते फ़िरोज़शाही, [illegible] तथा अमीरखुसरोका तुगलकनामामें भी इसका चरित्र मिलता है। कैम्ब्रिजके इतिहास जिल्द ३ में यह घटना कुछ भिन्न रूपमें है।

* शिवाजीके सदाचार-गुणोंकी उनके समकालीन ( प्रतिद्वन्द्वी ) मुगल इतिहास लेखक—खाफीखाँने भी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। एक ओर तो द्वेषसे वह उन्हें गालियाँ देता है, दूसरी ओर विवश होकर उसे उनके गुणोंकी पूजा करनी पड़ती है। स्मिथके शब्दोंमें:—

"It is a curious fact that the fullest account of these special virtues is to be found in the pages of the Muslim historian, Khafi Khan, who ordinarily brands Sivaji as a 'reprobate,' 'a sharp son of the Devil' etc, but nevertheless he honours him by the following passage:—

"In fine, Fortune so favoured this treacherous worthless man that his forces increased, and he grew more powerful every day.

पुराणके ५७ से ६२ तकके अध्याय, जो बड़े महत्त्वके हैं, बार-बार मननके योग्य हैं।

## ६—नृसिंहोपासनाकी विशेषता

पर इन सब श्रेष्ठ आचारोंका भी हेतु तथा परमश्रेष्ठाचार भगवान् श्रीहरिकी उपासना है। इस पुराणमें उसपर पूरा प्रकाश डाला गया है। इस पुराणके श्रवणसे भगवान् श्रीहरि परम प्रसन्न होते हैं। ( देखिये ग्रन्थके अन्तमें दी गयी विस्तृत फल-श्रुति।) यद्यपि नृसिंहोपासनापर वेदोंके अतिरिक्त नृसिंहतापिनी उपनिषद् ( पूर्व एवं उत्तर ), वायुपुराणके माघ-माहात्म्यका कुछ अंश, भागवतका सातवाँ स्कन्ध तथा नरसिंहचर्या, नरसिंहकल्प, नरसिंहपारिजात, नृसिंहकवच, नृसिंहभुजंगप्रयात, नृसिंहपञ्चरस्तोत्र, नृसिंह-पञ्चरत्नमाला, नृसिंहपटल, पद्धति, कवच, खिलभागका लक्ष्मी-नृसिंहसहस्रनामस्तोत्र* आदि पञ्चाङ्ग तथा नृसिंहचिन्तामणि, बीजाक्षर मन्त्रादि अनेक स्तोत्र-यन्त्र-तन्त्र प्रसिद्ध हैं, तथापि चरित्रात्मक स्वतन्त्र ग्रन्थ यही होनेसे, सम्प्रदाय-मन्दिरोंमें यह विशेष आदरणीय रहा है। यद्यपि पहले इसके कई संस्करण १—ठाकुरदास कटारे, विश्वेश्वरगंज, काशीके ( लीथो—पत्थरके छापेखानेकी प्रति ), २—जीवानंद विद्यासागर, रमानाथ मजमुदार स्ट्रीट, कलकत्ता, ३—गोपालनारायण ऐण्ड कम्पनी, बुकसेलर्स, ३२ गिरगाँव, कालबादेवी, बंबई आदि कई प्रकाशकोंद्वारा प्रकाशित हुए थे, तथापि अब उनमेंसे कहीं कोई भी प्राप्त नहीं है और गणेशपुराण एवं बृहद्धर्मपुराणादि-की ही तरह, किसी पुस्तकालयमें भी, यहाँतक कि काशीके भी बड़े-से-बड़े किन्हीं भी पुस्तकालयोंमें प्राप्य नहीं रह गया है। बंबईकी प्रति जो सबसे पीछे छपी, वह भी १९११ ई०की थी। कलकत्ताकी प्रति १८९० ई० की रही। लीथोकी प्रति और पहलेकी थी। पुरानी होनेसे १९११ की भी प्रतिके, जो इनसे पीछेकी रही, कागज छूते ही गल जाते थे। इस तरह यह पुराण अब सर्वथा अलभ्य-सा हो रहा था। अतः 'कल्याण' द्वारा इस ग्रन्थको समूल, सानुवाद प्रकाशितकर नष्टप्राय साहित्यकी रक्षाके लिये प्रयत्न किया गया है।

वास्तवमें आज संस्कृत-साहित्यकी पहलेसे भी अधिक उपेक्षा हो रही है। यह भी उसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। गणेश-जैसे आदिपूज्य देवताके पुराणकी भी वही दशा है। इसी उपेक्षासे आज अज्ञान, अज्ञानसे अविनय और अविनयसे अशान्ति तथा 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' के अनुसार सर्वत्र क्लेश, बेचैनी और अशान्ति अनुदिन, निरन्तर बढ़ती जा रही है। अतः मङ्गलमय भगवान्से प्रार्थना है कि वे हमें सद्बुद्धि दें, जिससे हम इन सदाचार-प्रधान ग्रन्थोंका स्वाध्याय-मननकर, विद्या-विनय-शीलसे सम्पन्न हों, जिससे देश तथा विश्वमें भी शान्ति एवं सुखकी स्थापना हो।

---

He erected new forts, and employed himself in setting his own territories, and in plundering those of Bijapur. He attacked the caravans which came from distant port and appropriated to himself the goods and women. But he made it a rule that wherever his followers went plundering, they should do no harm to the mosques, the Book of God ( the Holy Qoran ) or the woman of anyone. Whenever a copy of the sacred Qorau came into his hands, he treated with respect and gave it to some of his Muslim followers. When the women of any Muhammadan were taken prisoners by his men, he watched over them until their relation came to take their liberty."

( Oxford Hist. of India, Part II, Book VI, Page 412 )

* प्रायः वेदों तथा पुराणोंके बहुत-से 'खिल' भाग होते हैं, जो उनमें नहीं मिलते। उदाहरणार्थ श्रीसूक्त ऋग्वेदका खिलांश या खिल भाग है। इसी प्रकार 'नक्षत्रकल्प' ग्रन्थ अथर्ववेदका खिल भाग या परिशिष्ट कहा जाता है। इसी प्रकार हरिवंशपर्व महाभारतका खिल या परिशिष्ट भाग है। ऐसे ही अर्गलास्तोत्र, कवच, कीलक, वैकृतिकरहस्य, मूर्तिरहस्य आदि स्तोत्र मार्कण्डेयपुराणके खिल भाग या परिशिष्ट हैं, जो उसमें ( मूल मार्कण्डेयपुराणमें ) नहीं मिलते। इसी प्रकार श्रीलक्ष्मीनृसिंहसहस्रनाम-स्तोत्र ( गीताप्रेसद्वारा तथा वाणीविलासकी शंकरग्रन्थावली आदिमें मुद्रित ) आदि तथा ऊपर लिखे कुछ स्तोत्र नरसिंहपुराणके भी खिल भाग या परिशिष्ट हैं, पर वे उसमें नहीं मिलेंगे। ४० से ४४ तकके चार अध्याय नरसिंह-प्रादुर्भावके हैं। अतः उक्त स्तोत्रको ४४वें अध्यायका परिशेष मानना चाहिये।

# पढ़ो, समझो और करो

(१)

## यही हिंदू-संस्कृति है

गोरखपुर योगिराज श्रीगोरखनाथकी तपस्यास्थली है। शहरके उत्तरकी ओर प्राचीन सुन्दर मन्दिर है। वहाँ प्रतिदिन हजारों व्यक्ति दर्शनार्थ उपस्थित होते हैं। कुछ वर्ष पूर्व प्राचीन मन्दिरको नया भव्यरूप देनेके लिये कार्य प्रारम्भ हुआ था। उसके शिलान्यास-समारोहमें शहरके प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं विद्वान् आमन्त्रित थे। नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी उसमें उपस्थित थे। श्रीभाईजी सबसे आगेके सोफेपर आसीन थे। पासमें स्थानीय पूर्वोत्तर रेलवेके जनरल मैनेजर महोदय भी बैठे थे। वयोवृद्ध प्रसिद्ध संत एवं विद्वान् श्रीअक्षयकुमारजी बन्द्योपाध्याय महोदय भाषण कर रहे थे। वे हिंदू-संस्कृतिके स्वरूपपर प्रकाश डाल रहे थे। सभी उपस्थित महानुभाव मन्त्रमुग्ध-से हुए भाषण सुन रहे थे। भाषण पूरा होनेपर वे बैठनेके लिये आये। श्रीभाईजी एवं जनरल मैनेजर महोदयने उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें सोफेपर बैठा लिया। जनरल मैनेजर महोदय श्रीअक्षय बाबूके साथ-साथ सोफेपर बैठ गये, पर श्रीभाईजी श्रीअक्षय बाबूके समान आसनपर कैसे बैठते। वे तो उन्हें सदा अपने गुरुजनके रूपमें आदर देते आये थे। वे श्रीअक्षय बाबूके चरणोंके समीप नीचे जमीनपर बैठ गये। जनरल मैनेजर महोदयजीको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे श्रीभाईजीका हाथ पकड़कर उन्हें ऊपर सोफेपर बैठानेका प्रयत्न करने लगे। पर श्रीभाईजी टस-से-मस नहीं हुए। श्रीभाईजीने विनम्रतासे कहा—'मुझे महाराजजीके चरणोंमें ही बैठनेमें प्रसन्नता है।' श्रीअक्षय बाबू श्रीभाईजीके इस शील-स्वभावको देखकर गद्गद हो गये। उनकी आँखोंसे स्नेहके आँसू टपक पड़े तथा उन्होंने जनरल मैनेजर महोदयसे कहा—'यही हिंदू-संस्कृति है।' जनरल मैनेजर हिंदू-संस्कृतिके इस महान् आदर्शको देखकर मुग्ध हो गये।

(२)

## कीमत चुकाओ

सन् १९३८के आस-पास गीताप्रेसकी पहली तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन निकली थी। यात्री दक्षिणमें श्रीरामानुजाचार्यकी लीलाभूमि तोताद्रि गये। वहाँ यह प्रसिद्ध है कि भगवान्के तैलाभिषेकका प्रसाद शरीरकी खाजको मिटा देता है। तेलका बड़ा भारी कुण्ड भरा हुआ था। उसपर कोई कीमत नहीं थी। यात्रियोंमेंसे बहुतोंने बाजारसे टीन खरीदकर दस-दस बीस-बीस सेरतक तेल भर लिया। दूसरे दिन ट्रेनपर पहुँचनेपर ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको सूचना मिली। यात्री इकट्ठे किये गये। उन्होंने व्याख्यान दिया, 'यह अन्याय है, बेईमानी है। प्रसाद इस ढंगसे और इतना नहीं लिया जाता। आप सब कीमत चुकाओ।' उनके आदेशानुसार ही किया गया। उनकी न्यायनिष्ठा सचमुच प्रशंसनीय थी और दूसरे लोगोंके लिये एक शिक्षा थी।

—पूज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज, 'चिन्तामणि'

(३)

## ईमानदारी ऐसी चाहिये

हरिद्वार कुम्भ-मेलेमें आग लग गयी थी। गीताप्रेसकी पुस्तकोंकी दूकान भी जल गयी, बीमा कराया हुआ था। लिखा-पढ़ी करनेपर पूरी कीमत देनेकी मंजूरी मिल गयी। जब प्रेसके संस्थापक ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको यह ज्ञात हुआ, तब उन्होंने पूछा—'आग

लगनेसे पहले कुछ पुस्तकें बिक गयी थीं या नहीं ? उनकी कीमत आगमें जल गयी थी या नहीं ।' ठीक-ठीक माल्द्म करके उन्होंने जितनी हानि हुई थी, उतने रुपये रखवा दिये और बाकी वापस करवा दिये । ईमानदारीमें निष्ठा सत्पुरुषका सहज स्वभाव है ।

—पू० स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज, 'चिन्तामणि'

( ४ )

## सर्वस्व खोकर भी अविचल

प्रसङ्ग लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहलेका है । श्रीरामानन्द रायने श्रीक्षुदिराम चट्टोपाध्यायको बुलाकर कहा— 'क्षुदिराम महाशय ! आपको मेरा एक कार्य करना होगा ।' श्रीक्षुदिरामजी बंगालके 'देरे' नामक गाँवके रहनेवाले थे और श्रीरामानन्द राय देरे गाँवके जमींदार थे ।

'कौन-सा कार्य है ?'—श्रीक्षुदिरामने पूछा ।

'एक मुकदमेमें झूठी गवाही देनी है'—राजसी रोबके साथ परुष वाणीमें श्रीरामानन्द रायने कहा । 'और यदि गवाही नहीं दी तो जैसे यह झूठा मुकदमा दायर किया है, उसी प्रकार आपके विरुद्ध भी अदालतमें झूठा मुकदमा दायर हो जायगा । फिर इसका फल भुगतनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये ।'

जमींदार रामानन्द रायके क्रूर स्वभावसे सभी परिचित थे । आस-पासके सभी गाँवोंको यह बात ज्ञात थी कि जिससे इनकी अनबन हो जाती थी, उसका पेड़-पत्ता, जड़-मूल सभी उखाड़कर फिंकवा देते थे । श्रीक्षुदिराम थे सरल स्वभावके ब्राह्मण, उनका जीवन सत्य-सेवापूर्ण था; भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे प्रतिदिन पूजन करते थे। उनकी भक्ति-भावना, सत्य-निष्ठा, सेवा-भाव, धर्मपरायणता आदि लोगोंमें आदर एवं चर्चाकी वस्तु थीं । गवाही नहीं देनेका अर्थ था जमींदार रामानन्द रायके कोपका भाजन बनकर १५० बीघा जमीनसे हाथ धोना, मकानका नीलाम होना, गृहस्थीका बर्बाद होना, पत्नी-पुत्र-पुत्रीका भूखों मरना । भावी विपत्तिके काले दृश्य आँखोंके सामने नाचने लगे । इससे भी श्रीक्षुदिराम विचलित नहीं हुए और उन्होंने गवाही देनेसे इन्कार कर दिया ।

श्रीरामानन्द रायने फिर डराया-धमकाया, साथ ही लोभ भी दिया; परंतु क्षुदिराम न भयके कारण डिगे और न प्रलोभनके सामने झुके । अन्तमें वही हुआ, जिसकी आशङ्का थी । श्रीक्षुदिरामके विरुद्ध झूठी अदालती कार्रवाई हुई । रामानन्द राय जीत गये और श्रीक्षुदिरामका सारा खेत एवं मकान बिक गया । जो कभी दाता थे, वही क्षुदिराम दाने-दानेके मुहताज हो गये । बसा-बसाया परिवार उजड़ गया, बाप-दादोंका वैभव बिखर गया; परंतु श्रीक्षुदिराम अपनी धर्म-निष्ठापर अडिग रहे । विपत्तिका पहाड़ ही मानो उनपर टूट गया, पर वे तिल-भर भी विचलित नहीं हुए । सर्वस्व खोनेवाले श्रीक्षुदि-रामने देरे ग्राम छोड़ दिया और उन्होंने समीपके कामार-पुकुर ग्राममें आश्रय लिया । साथ थे उनके पुत्र-पुत्री, उनकी साध्वी पत्नी चन्द्रा, उनके आराध्य भगवान् राम-चन्द्रका विग्रह और उनकी अडिग धर्म-निष्ठा ।

इन्हीं संत-दम्पति चन्द्रा-क्षुदिरामको परमहंस श्रीरामकृष्णजीके माता-पिता होनेका सौभाग्य मिला, जिनके शिष्य थे विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्द और जो थे जगज्जननी कालीकी भक्तिकी साकार मूर्ति । श्रीगीताजीमें ठीक ही कहा है कि 'योगी योगीके घर जन्म लेता है, जो अत्यन्त दुर्लभ है ।'

—'श्रीश्याम'

# क्षमा-याचना एवं कृतज्ञता-प्रकाश

परम श्रद्धेय श्रीभाईजी ( श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) के गत चैत्र कृष्णा दशमी, २०२७ दिनाङ्क २२ मार्च १९७१ को नश्वर शरीर त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेपर उनके पार्थिव वियोगसे व्यथित सहस्रों श्रद्धालु, आत्मीय तथा परिचित महानुभावोंके एवं अनेकानेक संस्थाओंकी ओरसे सहानुभूतिपूर्ण समवेदनाके तार, पत्र एवं शोकप्रस्ताव आये हैं और अभीतक आ रहे हैं। उन सभी स्नेही एवं कृपालु महानुभावों एवं संस्थाओंके संचालकोंको उनकी सहानुभूति एवं समवेदनाके लिये हमने अपनी ओरसे कृतज्ञता-पत्र भेजनेकी चेष्टा की है तथा अब भी बराबर पत्र दे रहे हैं। परंतु अनेकों तारों और पत्रोंमें प्रेषकका नाममात्र है और कहीं-कहीं तो नाम भी इतना संक्षिप्त है कि बहुत विचार करनेपर भी उनका पूरा पता समझना सम्भव नहीं हो पाया है। अतएव पूरे पतेके अभावके कारण ऐसे महानुभावोंतक अपनी कृतज्ञता पहुँचानेमें हम असमर्थ रहे हैं। अपनी इस लाचारीके कारण हम इस विनीत प्रार्थनाके द्वारा उन सब महानुभावोंसे अपनी विवशताके लिये करबद्ध क्षमा-याचना करते हैं और परम श्रद्धेय श्रीभाईजीके परिवारकी ओरसे, 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' के सम्पादकीय विभागकी ओरसे तथा गीताप्रेस-परिवारकी ओरसे हम आन्तरिक आभार एवं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इसी प्रकार हमपर सदा कृपा एवं प्रीति रखनेवाले संत-महात्माओं, विद्वानों, जन-नायकों आदिने देशकी विभिन्न भाषाओंकी पत्र-पत्रिकाओंमें परम श्रद्धेय श्रीभाईजीके प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ एवं उनके प्रति अपने आत्मीयतापूर्ण उद्गार प्रकाशित किये हैं। हम उन सबके प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। सचमुच सभी महानुभावोंकी सौहार्दपूर्ण सहानुभूतिसे हमें बड़ा बल मिला है। सभी महानुभावोंसे तथा अणु-अणु एवं परमाणु-परमाणुके रूपमें अभिव्यक्त श्रीराधामाधवसे यही याचना है कि उन महामानवके जीवनका रस हमलोगोंके जीवनमें प्रवाहित हो तथा हम उनके पद-चिह्नोंका यत्किंचित् भी अनुसरण कर सकें।

विनीत—

चिम्मनलाल गोस्वामी

सम्पादक

## 'कल्याण' नामक हिंदी मासिकपत्रके सम्बन्धमें विवरण

फार्म चार—नियम-संख्या—आठ

१—प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर

२—प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३—मुद्रकका नाम—मोतीलाल जालान
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४—प्रकाशकका नाम—मोतीलाल जालान
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५—सम्पादकका नाम—श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

६—उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मागांधी रोड कलकत्ता ( सन् १८६० के विधान २१के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था )

मैं मोतीलाल जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

दि० १ मार्च १९७१

मोतीलाल जालान
प्रकाशक

रजि० सं० एल्० १७५

# कृपालु संत-महात्माओं, आचार्यों तथा भक्त एवं विद्वान् लेखकोंके चरणोंमें विनीत प्रार्थना

( १ ) परम भागवत श्रीपोद्दारजीके पार्थिव देह त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेसे 'कल्याण'के सम्पादनका भार मेरे दुर्बल कंधोंपर आ पड़ा है, जिसे वहन करनेमें मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता हूँ। अबतक तो 'कल्याण'का सारा भार श्रीपोद्दारजी अकेले ही वहन करते थे। मेरा नाम तो उन्होंने शीलवश मुझे प्रोत्साहन देने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही अपने गौरवशाली नामके साथ जोड़ दिया था। मेरे अंदर न तो साधनका बल है न आध्यात्मिक अनुभव, न त्याग है न तप है, न दैवी सम्पदा है न प्रौढ़ विचार हैं, न वैसा शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन है, न मेरी लेखनीमें ही शक्ति है। ऐसी दशामें 'कल्याण' जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अंदर सर्वथा अभाव देखता हूँ। मुझे तो एकमात्र भरोसा है उन कृपालु संत-महात्माओं तथा आचार्योंके कृपापूर्ण आशीर्वाद एवं सुझावोंका, जो सदा ही 'कल्याण'को अपना मानते आये हैं और उसका हित-चिन्तन करते आये हैं तथा उन सहृदय लेखकोंके सहयोगका, जिन्होंने अपनी बहुमूल्य सामग्रीसे 'कल्याण'के पृष्ठोंको अबतक अलंकृत किया है। उन सबके चरणोंमें मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे अबतक जिस प्रकार 'कल्याण'पर कृपा करते आये हैं, उसी प्रकार उसपर अपनी ममता एवं स्नेह बनाये रहें और 'कल्याण'में प्रकाशित करनेके लिये अपनी बहुमूल्य रचनाएँ भेजते रहें।

( २ ) मेरी दूसरी प्रार्थना ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं नित्यलीलालीन श्रीपोद्दारजीके बहुसंख्यक मित्रों एवं भक्तोंसे है। जिनका उक्त दोनों महानुभावोंके साथ पत्र-व्यवहार रहा है और जिनके पास उक्त दोनों महापुरुषोंके पत्र सुरक्षित हों, वे यदि कृपापूर्वक, व्यक्तिगत बातोंको छोड़कर जिन्हें वे प्रकाशमें लाना न चाहें, अपने उन पत्रोंको मूलरूपमें अथवा प्रतिलिपि कराके भेज दें तो उन्हें बिना उनका नाम दिये क्रमशः 'कल्याण' में छापा जा सकता है। मेरा अनुमान है कि उन पत्रोंमें ऐसी बहुमूल्य बातें अवश्य होंगी, जिनके प्रकाशमें आनेसे पाठकोंका विशेष उपकार होगा।

( ३ ) तीसरी बात यह है कि उक्त दोनों महापुरुषोंका जीवन मेरी क्षुद्र धारणाके अनुसार सभी दृष्टियोंसे आदर्श था। उनका चरित्र परम उज्ज्वल एवं गीतोक्त दैवी सम्पदाका भंडार था। 'कल्याण'के पाठकोंमें ऐसे हजारों नर-नारी होंगे, जो उक्त दोनों महानुभावोंके निकट सम्पर्कमें आये हों। ऐसे सभी महानुभावोंसे मेरा सादर अनुरोध है कि वे ऐसे मार्मिक प्रसङ्गोंको स्मरण करके तथा लेखबद्ध करके क्रमशः 'कल्याण'में प्रकाशित करनेके लिये मेरे पास भेजते रहें, जिससे जन-साधारणका नैतिक स्तर ऊँचा उठानेमें सहायता मिल सके। मुझे आशा है कि इन तीनों ही बातोंमें 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाओंका मुझे पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

विनीत—

चिम्मनलाल गोस्वामी